सूची-पत्र

प्रेम-प्रमोद

विश्वास

(१)

उन दिनों मिस जोशी बम्बई सभ्य-समाज की राधिका थी। थी तो वह एक छोटी-सी कन्या-पाठशाला की अध्यापिका, पर उसका ठाट-बाट, मान-सम्मान बड़ी बड़ी धन-रानियों को भी लज्जित करता था। वह एक महल में रहती थी जो किसी ज़माने में सितारा के महाराना का निवासस्थान था। वहाँ सारे दिन नगर के रईसों, राजों, राज-कर्मचारियों का ताँता लगा रहता था। वह सारे प्रान्त के धन और कीर्ति उपासकों की देवी थी। अगर किसी को ख़िताब का ख़ब्त था तो मिस जोशी की ख़ुशामद करता था, किसी को अपने या अपने [illegible] के लिए कोई अच्छा ओहदा दिलाने की धुन थी तो वह [illegible] की आराधना करता था। सरकारी इमारतों के ठीके, शराब, अफ़ीम आदि सरकारी चीजों के ठीके, लोहे-लकड़ी, [illegible]जे आदि के ठीके सब मिस जोशी ही के हाथों में थे। जो कुछ

करती थी कहा करती थी, जो कुछ होता था उसी के हाथों होता था। जिस वक़्त वह अपनी अरबी घोड़ों की फ़िटन पर सैर करने निकलती तो रईसों की सवारियाँ आप ही आप रास्ते से हट जाती थीं, बड़े बड़े दूकानदार खड़े हो होकर सलाम करने लगते थे। वह रूपवती थी, लेकिन नगर में उससे बढ़कर रूपवती रमणियाँ भी थीं; वह सुशिक्षिता थी, वाक्य-चतुर थी, गाने में निपुण, हँसती तो अनोखी छवि से, बोलती तो निराली छटा से, ताकती तो बाँकी चितवन से। लेकिन इन गुणों में उसका एकाधिपत्य न था। उसकी प्रतिष्ठा, शक्ति और कीर्ति का कुछ और ही रहस्य था। सारा नगर ही नहीं, सारे प्रान्त का बच्चा बच्चा जानता था कि बम्बई के गवर्नर मिस्टर जौहरी मिस जोशी के बिना दामों के गुलाम हैं। मिस जोशी की आँखों का इशारा उनके लिए नादिरशाही हुक्म है। वह थिएटरों में, दावतों में, जलसों में मिस जोशी के साथ साये की भाँति रहते हैं और कभी कभी उनकी मोटर रात के सन्नाटे में मिस जोशी के मकान से निकलती हुई लोगों को दिखाई देती है। इस प्रेम में वासना की मात्रा अधिक है या भक्ति की, यह कोई नहीं जानता। लेकिन मिस्टर जौहरी विवाहित हैं और मिस जोशी विधवा; इस लिए जो लोग उनके प्रेम को कलुषित कहते हैं वे उन पर कोई अत्याचार नहीं करते।

बम्बई की व्यवस्थापक-सभा ने अनाज पर कर लगा दिया था और जनता की ओर से उसका विरोध करने के लिए एक विराट सभा हो रही थी। सभी नगरों से प्रजा के प्रतिनिधि उसमें सम्मि-

[illegible] ने के लिए हज़ारों की संख्या में आये थे। मिस जोशी के [illegible] भवन के सामने चौड़े मैदान में हरी हरी घास पर बम्बई की जनता अपनी फ़रियाद सुनाने के लिए जमा थी। अभी तक [illegible]पति न आये थे, इस लिए लोग बैठे गपशप कर रहे थे। कोई कर्मचारियों पर आक्षेप करता था, कोई देश की स्थिति पर, कोई अपनी दीनता पर—अगर हम लोगों में अकड़ने का ज़रा भी सामर्थ्य होता तो मजाल थी कि यह कर लगा दिया जाता, अधिकारियों का घर से बाहर निकलना मुशकिल हो जाता। हमारा ज़रूरत से ज्यादा सीधापन हमें अधिकारियों के हाथों का खिलौना बनाये हुए है। वे जानते हैं कि इन्हें जितना दबाते जाओ, उतना दबते जायेंगे, सिर नहीं उठा सकते। सरकार ने भी उपद्रव की आशंका से सशस्त्र पुलीस बुला ली थी। उस मैदान के चारों कोनों पर सिपाहियों के दल डेरे डाले पड़े थे। उनके अफ़सर, घोड़ों पर सवार, हाथ में हंटर लिये, जनता के बीच में निश्शंक भाव से घोड़े दौड़ाते फिरते थे, मानो साफ़ मैदान है। मिस जोशी के ऊँचे बरामदे में नगर के सभी बड़े बड़े रईस और राज्याधिकारी तमाशा देखने के लिए बैठे हुए थे। मिस जोशी मेहमानों का आदर-सत्कार कर रही थीं और मिस्टर जौहरी, आराम-कुरसी पर लेटे, इस जन-समूह को घृणा और भय की दृष्टि से देख रहे थे।

सहसा सभापति महाशय आपटे एक किराये के ताँगे पर आते दिखाई दिये। चारों तरफ़ हलचल मच गई, लोग उठ उठकर उनका स्वागत करने दौड़े और उन्हें लाकर मंच पर बैठा दिया

आपटे की अवस्था ३०-३५ वर्ष से अधिक न थी, दुर्बल-पतले आदमी थे, मुख पर चिन्ता का गाढ़ा रंग चढ़ा हुआ; बाल भी पक-चले थे, पर मुख पर सरल हास्य की रेखा झलक रही थी। वह एक सुफेद मोटा कुरता पहने हुए थे, न पाँव में जूते थे, न सिर पर टोपी। इस अर्द्धनग्न, दुर्बल, निस्तेज प्राणी में न-जाने कौनसा जादू था कि समस्त जनता उसकी पूजा करती थी, उसके पैरों पर सिर रगड़ती थी। इस एक प्राणी के हाथों में इतनी शक्ति थी कि वह क्षणमात्र में सारी मिलों को बन्द करा सकता था, शहर का सारा कारोबार मिटा सकता था। अधिकारियों को उसके भय से नींद न आती थी, रात को सोते सोते चौंक पड़ते थे। उससे ज़्यादा भयंकर जन्तु अधिकारियों की दृष्टि में दूसरा न था। यह प्रचंड शासन-शक्ति उस एक हड्डी के आदमी से थरथर काँपती थी, क्योंकि उस हड्डी में एक पवित्र, निष्कलंक, बलवान्, और दिव्य आत्मा का निवास था।

(२)

आपटे ने मंच पर खड़े होकर पहले जनता को शान्त चित्त रहने और अहिंसा-व्रत पालन करने का आदेश दिया। फिर देश की राजनीतिक स्थिति का वर्णन करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि सामने मिस जोशी के बरामदे की ओर गई तो उनका प्रजा-दुख-पीड़ित हृदय तिलमिला उठा। यहाँ अगणित प्राणी अपनी विपत्ति की फ़रियाद सुनाने के लिए जमा थे और वहाँ मेज़ों पर चाय और बिस्कुट, मेवे और फल, बर्फ़ और शराब की रेल-पेल थी। वे लोग

...भागों को देख देख हँसते और तालियाँ बजाते थे। जीवन
... बार आपटे की ज़बान क़ाबू से बाहर हो गई। मेघ की
...ति गरजकर बोले—

...र तो हमारे भाई दाने दाने को मुहताज हो रहे हैं, उधर अनाज पर कर लगाया जा रहा है, केवल इस लिए कि राज-कर्मचारियों के हलुवे-पूरी में कमी न हो। हम जो देश के राजा हैं, जो छाती फाड़कर धरती से धन निकालते हैं, भूखों मरते हैं; और वे लोग, जिन्हें हमने अपने सुख और शांति की व्यवस्था करने के लिए रक्खा है, हमारे स्वामी बने हुए शराबों की बोतलें उड़ाते हैं। कितनी अनोखी बात है कि स्वामी भूखों मरे और सेवक शराबें उड़ाये, मेवे खाये और इटाली और स्पेन की मिठाइयाँ चखे! यह किसका अपराध है? क्या सेवकों का? नहीं, कदापि नहीं, यह हमारा ही अपराध है कि हमने अपने सेवकों को इतना अधिकार दे रक्खा है। आज हम उच्च स्वर से कह देना चाहते हैं कि हम यह क्रूर और कुटिल व्यवहार नहीं सह सकते! यह हमारे लिए असह्य है कि हम और हमारे बाल-बच्चे दानों को तरसें और कर्मचारी लोग, विलास में डूबे हुए हमारे करुण-क्रंदन की ज़रा भी परवा न करते हुए विहार करें। यह असह्य है कि हमारे घरों में चूल्हे न जलें और कर्मचारी लोग थिएटरों में ऐश करें, नाच-रङ्ग की महफ़िलें सजायें, दावतें उड़ायें, वेश्याओं पर कंचन की वर्षा करें। संसार में ऐसा और कौन देश होगा, जहाँ प्रजा तो भूखों मरती हो और प्रधान कर्मचारी अपने प्रेम-क्रीड़ाओं में मग्न हों, जहाँ स्त्रियाँ गलियों में

ठोकरें खाती-फिरती हों और अध्यापिकाओं का वेष धारण करने-वाली वेश्याएँ आमोद-प्रमोद के नशे में चूर हों........।

(३)

एकाएक सशस्त्र सिपाहियों के दल में हलचल पड़ गई। उनका अफ़सर हुक्म दे रहा था—सभा-भङ्ग कर दो, नेताओं को पकड़ लो, कोई न जाने पाये। यह विद्रोहात्मक व्याख्यान है।

मिस्टर जौहरी ने पुलीस के अफ़सर को इशारे से बुलाकर कहा—और किसी को गिरफ़तार करने की ज़रूरत नहीं। आपटे ही को पकड़ो। वही हमारा शत्रु है।

पुलीस ने डंडे चलाने शुरू किये और कई सिपाहियों के साथ जाकर अफ़सर ने आपटे को गिरफ़तार कर लिया।

जनता ने त्योरियाँ बदलीं। अपने प्यारे नेता को यों गिरफ़तार होते देखकर उनका धैर्य हाथ से जाता रहा।

लेकिन उसी वक्त आपटे की ललकार सुनाई दी—तुमने अहिंसा-व्रत किया है और अगर किसी ने उस व्रत को तोड़ा तो उसका दोष मेरे सिर होगा। मैं तुमसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि अपने अपने घर जाओ। अधिकारियों ने वही किया जो समझे थे। इस सभा से हमारा जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया। हम यहाँ बलवा करने नहीं, केवल संसार की नैतिक सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जमा हुए थे और हमारा उद्देश्य पूरा हो गया।

एक क्षण में सभा-भङ्ग हो गई और आपटे पुलीस की हवालात में भेज दिये गये!

(४)

[illegible]स्टर जौहरी ने कहा—बचा, बहुत दिनों के बाद पञ्जे में [illegible]ये हैं। राज-द्रोह का मुकदमा चलाकर कम से कम १० साल के लिए अंडमन भेजूँगा।

मिस जोशी—इससे क्या फ़ायदा!

"क्यों? उसको अपने किये की सज़ा मिल जायगी।"

"लेकिन सोचिए, हमें उसका कितना मूल्य देना पड़ेगा? अभी जिस बात को गिने-गिनाये लोग जानते हैं वह सारे संसार में फैलेगी और हम कहीं मुँह दिखाने लायक़ न रहेंगे। आप अख़बारों के संवाददाताओं की ज़बान तो नहीं बन्द कर सकते।"

"कुछ भी हो, मैं इसे जेल में सड़ाना चाहता हूँ। कुछ दिनों के लिए तो चैन की नींद नसीब होगी। बदनामी से तो डरना ही व्यर्थ है। हम प्रान्त के सारे समाचारपत्रों को अपने सदाचार का राग अलापने के लिए मोल ले सकते हैं। हम प्रत्येक लाञ्छन को झूठा साबित कर सकते हैं, आपटे पर मिथ्या दोषारोपण का अपराध लगा सकते हैं।"

"मैं इससे सहज उपाय बतला सकती हूँ। आप आपटे को मेरे हाथ में छोड़ दीजिए। मैं उससे मिलूँगी और उन यंत्रों से, [illegible] प्रयोग करने में हमारी जाति सिद्धहस्त है, उसके आंतरिक [illegible] और विचारों की थाह लेकर आपके सामने रख दूँगी। मैं [illegible]ण खोज निकालना चाहती हूँ जिनके उत्तर में उसे मुँह [illegible] का साहस न हो, और संसार की सहानुभूति उसके बदले

हमारे साथ हो। चारों ओर से यही आवाज़ आये कि यह कपटी और धूर्त था और सरकार ने उसके साथ वही व्यवहार किया है जो होना चाहिए। मुझे विश्वास है कि वह षड्यंत्रकारियों का मुखिया है और मैं इसे सिद्ध कर देना चाहती हूँ। मैं उसे जनता की दृष्टि में देवता नहीं बनाना चाहती, उसको राक्षस के रूप में दिखाना चाहती हूँ।"

"यह काम इतना आसान नहीं है जितना तुमने समझ रक्खा है। आपटे राजनीति में बड़ा चतुर है।"

"ऐसा कोई पुरुष नहीं है जिस पर युवती अपनी मोहिनी न डाल सके।"

"अगर तुम्हें विश्वास है कि तुम यह काम पूरा कर दिखाओगी तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, मैं तो केवल उसे दण्ड देना चाहता हूँ।"

"तो हुक्म दे दीजिए कि वह इसी वक्त छोड़ दिया जाय।"

"जनता कहीं यह तो न समझेगी कि सरकार डर गई?"

"नहीं, मेरे खयाल में तो जनता पर इस व्यवहार का बहुत अच्छा असर पड़ेगा। लोग समझेंगे कि सरकार ने जन-मत का सम्मान किया है।"

"लेकिन तुम्हें उसके घर जाते लोग देखेंगे तो मन में क्या कहेंगे?"

"नक़ाब डालकर जाऊँगी; किसी को कानोकान ख़बर न होगी।"

"मुझे तो अब भी भय है कि वह तुम्हें संदेह की दृष्टि से देखेगा और तुम्हारे पंजे में न आयेगा, लेकिन तुम्हारी इच्छा है तो आज़मा देखो।"

यह कहकर मिस्टर जौहरी ने मिस जोशी को प्रेम-मय नेत्रों से देख हाथ मिलाया और चले गये।

आकाश पर तारे निकले हुए थे, चैत की शीतल, सुखद वायु चल रही थी, सामने के चौड़े मैदान में सन्नाटा छाया हुआ था, लेकिन मिस जोशी को ऐसा मालूम हुआ मानो आपटे मञ्च पर खड़ा बोल रहा है। उसका शांत, सौम्य, विषादमय स्वरूप उसकी आँखों में समाया हुआ था।

(५)

प्रातःकाल मिस जोशी अपने भवन से निकली, लेकिन उसके वस्त्र बहुत साधारण थे और आभूषण के नाम शरीर पर एक धागा भी न था। अलंकार-विहीन होकर उसकी छवि स्वच्छ, निर्मल जल की भाँति और भी निखर गई थी। उसने सड़क पर आकर एक ताँगा लिया और चली।

आपटे का मकान ग़रीबों के एक दूर के मुहल्ले में था। ताँगे-वाला मकान का पता जानता था। कोई दिक़्क़त न हुई। मिस जोशी जब मकान के द्वार पर पहुँची तो न-जाने क्यों उसका दिल धड़क रहा था। उसने काँपते हुए हाथों से कुण्डी खटखटाई। एक अधेड़ औरत ने निकलकर द्वार खोल दिया। मिस जोशी उस घर की सादगी देखकर दंग रह गई। एक किनारे चारपाई पड़ी हुई थी, एक टूटी अलमारी में कुछ किताबें चुनी हुई थीं, फ़र्श पर लिखने का डेस्क था और एक रस्सी की अलगनी पर कपड़े लटक रहे थे।

कमरे के दूसरे हिस्से में एक लोहे का चूल्हा था और खाने के बरतन पड़े हुए थे। एक लम्बा-तड़ंगा आदमी, जो उसी अधेड़ औरत का पति था, बैठा एक टूटे हुए ताले की मरम्मत कर रहा था और एक पाँच-छः वर्ष का तेजस्वी बालक आपटे की पीठ पर चढ़ने के लिए उनके गले में हाथ डाल रहा था। आपटे इसी लोहार के साथ उसी के घर में रहते थे। समाचारपत्रों में लेख लिखकर जो कुछ मिलता उसे दे देते और इस भाँति गृह-प्रबंध की चिंताओं से छुट्टी पाकर जीवन व्यतीत करते थे।

मिस जोशी को देखकर आपटे जरा चौंके, फिर खड़े होकर उनका स्वागत किया और सोचने लगे कि कहाँ बैठाऊँ। अपनी दरिद्रता पर आज उन्हें जितनी लज्जा आई, उतनी और कभी न आई थी! मिस जोशी उनका असमंजस देखकर चारपाई पर बैठ गई और जरा रुखाई से बोलीं—मैं बिना बुलाये आपके यहाँ आने के लिए क्षमा माँगती हूँ, किन्तु काम ऐसा जरूरी था कि मेरे आये बिना पूरा न हो सकता। क्या मैं एक मिनट के लिए आपसे एकांत में मिल सकती हूँ?

आपटे ने जगन्नाथ की ओर देखकर कमरे से बाहर चले जाने का इशारा किया, उसकी स्त्री भी बाहर चली गई। केवल बालक रह गया। वह मिस जोशी की ओर बार बार उत्सुक आँखों से देखता था मानो पूछ रहा हो कि तुम आपटे दादा की कौन हो?

मिस जोशी ने चारपाई से उतरकर ज़मीन पर बैठते हुए कहा—आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कि मैं इस वक्त क्यों आई हूँ?

आपटे ने झेंपते हुए कहा—आपकी कृपा के सिवा और क्या कारण हो सकता है।

मिस जोशी—नहीं, संसार अभी इतना उदार नहीं हुआ है कि आप जिसे गालियाँ दें, वह आपको धन्यवाद दे। आपको याद है कल आपने अपने व्याख्यान में मुझ पर क्या क्या आक्षेप किये थे। मैं आपसे ज़ोर देकर कहती हूँ कि वे आक्षेप करके आपने मुझ पर घोर अत्याचार किया है। आप-जैसे सहृदय,शीलवान्,विद्वान् आदमी से मुझे ऐसी आशा न थी। मैं अबला हूँ, मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। क्या आपको उचित था कि एक अबला पर मिथ्यारोपण करें। अगर मैं पुरुष होती तो आपसे duel खेलने का आग्रह करती। अबला हूँ, इस लिए आपकी सज्जनता को स्पर्श करना ही मेरे हाथ में है। आपने मुझ पर जो लाञ्छन लगाये हैं वे सर्वथा निर्मूल हैं।

आपटे ने दृढ़ता से कहा—अनुमान तो बाहरी प्रमाणों से ही किया जाता है।

मिस जोशी—बाहरी प्रमाणों से आप किसी के अंतस्थल की बात नहीं जान सकते।

आपटे—जिसका भीतर-बाहर एक न हो उसे देखकर भ्रम में पड़ जाना स्वाभाविक है।

मिस जोशी—हाँ, तो यह आपका भ्रम है और मैं चाहती हूँ कि आप उस कलंक को मिटा दें जो आपने मुझ पर लगाया है। आप इसके लिए प्रायश्चित्त करेंगे?

आपटे—अगर न करूँ तो मुझसे बड़ा दुरात्मा संसार में न होगा।

मिस जोशी—आप मुझ पर विश्वास करते हैं?

आपटे—मैंने आज तक किसी रमणी पर अविश्वास नहीं किया।

मिस जोशी—क्या आपको यह संदेह हो रहा है कि मैं आपके साथ कौशल कर रही हूँ?

आपटे ने मिस जोशी की ओर अपने सदय, सजल, सरस नेत्रों से देखकर कहा—बाईजी, मैं गँवार और अशिष्ट प्राणी हूँ, लेकिन नारि-जाति के लिए मेरे हृदय में जो आदर है, वह उस श्रद्धा से कम नहीं है, जो मुझे देवताओं पर है। मैंने अपनी माता का मुख नहीं देखा, यह भी नहीं जानता कि मेरा पिता कौन था, किन्तु जिस देवी के दया-वृक्ष की छाया में मेरा पालन-पोषण हुआ उसकी प्रेम-मूर्ति आज तक मेरी आँखों के सामने है और नारि-जाति के प्रति मेरी भक्ति को सजीव रक्खे हुए है। मैं उन शब्दों को मुँह से निकालने के लिए अत्यन्त दुखी और लज्जित हूँ जो आवेश में निकल गये और मैं आज ही समाचारपत्रों में खेद प्रकट करके आपसे क्षमा की प्रार्थना करूँगा।

मिस जोशी को अब तक अधिकांश स्वार्थी आदमियों ही से साबिक़ा पड़ा था जिनके चिकने-चुपड़े शब्दों में मतलब छिपा होता था। आपटे के सरल विश्वास पर उसका चित्त आनन्द से गद्गद हो गया। शायद वह गंगा में खड़ी होकर अपने अन्य मित्रों से

यह बात कहती तो उसके फैशनेबुल मिलनेवालों में से किसी को उस पर विश्वास न आता। सब मुँह के सामने तो हाँ हाँ करते पर द्वार के बाहर निकलते ही उसका मज़ाक उड़ाना शुरू करते। उन कपटी मित्रों के सम्मुख यह आदमी था जिसके एक एक शब्द में सचाई झलक रही थी, जिसके शब्द उसके अंतस्थल से निकलते हुए मालूम होते थे।

आपटे उसे चुप देखकर किसी और ही चिन्ता में पड़े हुए थे। उन्हें भय हो रहा था कि अब मैं चाहे कितनी क्षमा माँगूँ, मिस जोशी के सामने कितनी सफ़ाइयाँ पेश करूँ,मेरे आक्षेपों का असर कभी न मिटेगा।

इस भाव ने अज्ञात रूप से उन्हें अपने विषय की वह गुप्त बातें कहने की प्रेरणा की जो उन्हें उसकी दृष्टि में लघु बना दें, जिससे वह भी उन्हें नीच समझने लगे, उसको संतोष हो जाय कि यह भी कलुषित आत्मा है। बोले—मैं जन्म से अभागा हूँ। माता-पिता का तो मुँह ही देखना नसीब न हुआ, जिस दयाशीला महिला ने मुझे आश्रय दिया था वह भी मुझे १३ वर्ष की अवस्था में अनाथ छोड़कर परलोक सिधार गई, उस समय मेरे सिर पर जो कुछ बीती उसे याद करके इतनी लज्जा आती है कि किसी को मुँह न दिखाऊँ। मैंने धोबी का काम किया, मोची का काम किया, घोड़े की साईसी की, एक होटल में बरतन माँजता रहा, यहाँ तक कि कितनी ही बार क्षुधा से व्याकुल होकर भीख भी माँगी। मज-दूरी करने को तो मैं बुरा नहीं समझता, आज भी मज़दूरी हो

करता हूँ। भीख माँगनी भी किसी किसी दशा में क्षम्य है, लेकिन मैंने उस अवस्था में ऐसे ऐसे कर्म किये जिन्हें कहते लज्जा आती है—चोरी की, विश्वासघात किया, यहाँ तक कि चोरी के अपराध में कैद की सजा भी पाई।

मिस जोशी ने सजल नयन होकर कहा—आप यह सब बातें मुझसे क्यों कह रहे हैं? मैं इनका उल्लेख करके आपको कितना बदनाम कर सकती हूँ, इसका आपको भय नहीं है?

आपटे ने हँसकर कहा—नहीं, आपसे मुझे यह भय नहीं है।

मिस जोशी—अगर मैं आपसे बदला लेना चाहूँ तो?

आपटे—जब मैं अपने अपराध पर लज्जित होकर आपसे क्षमा माँग रहा हूँ तो मेरा अपराध रहा ही कहाँ, जिसका आप मुझसे बदला लेंगी। इससे तो मुझे भय होता है कि आपने मुझे क्षमा नहीं किया। लेकिन यदि मैंने आपसे क्षमा न माँगी होती तो भी आप मुझसे बदला न ले सकतीं। बदला लेनेवालों की आँखें यों सजल नहीं हो जाया करतीं। मैं आपको कपट करने के अयोग्य समझता हूँ। आप यदि कपट करना चाहतीं तो यहाँ कभी न आतीं।

मिस जोशी—मैं आपका भेद लेने ही के लिए आई हूँ।

आपटे—तो शौक से लीजिए। मैं बतला चुका हूँ कि मैंने चोरी के अपराध में कैद की सजा पाई थी। नासिक के जेल में रक्खा गया था। मेरा शरीर दुर्बल था, जेल की कड़ी मेहनत न हो सकती थी और अधिकारी लोग मुझे काम-चोर समझकर बेतों से मारते थे। आखिर एक दिन मैं रात को जेल से भाग खड़ा हुआ।

मिस जोशी—आप तो छिपे रुसतम निकले!

आपटे—ऐसा भागा कि किसी को खबर न हुई। आज तक मेरे नाम वारंट जारी है और ५००) इनाम भी है।

मिस जोशी—तब तो मैं आपको ज़रूर ही पकड़ा दूँगी।

आपटे—तो फिर मैं आपको अपना असल नाम भी बतलाये देता हूँ। मेरा नाम दामोदर मोदी है। यह नाम तो पुलीस से बचने के लिए रख छोड़ा है।

बालक अब तक तो चुपचाप बैठा हुआ था। मिस जोशी के मुँह से पकड़ाने की बात सुनकर वह सजग हो गया। उन्हें डाट-कर बोला—हमाले दादा को कौन पकलेगा?

मिस जोशी—सिपाही, और कौन?

बालक—हम सिपाही को मालेंगे।

यह कहकर वह एक कोने से अपने खेलने का डंडा उठा लाया और आपटे के पास वीरोचित भाव से खड़ा हो गया मानो सिपा-हियों से उनकी रक्षा कर रहा है।

मिस जोशी—आपका रक्षक तो बड़ा बहादुर मालूम होता है।

आपटे—इसकी भी एक कथा है। सालभर होते हैं यह लड़का खो गया था। मुझे रास्ते में मिला। मैं पूछता पूछता इसे यहाँ लाया। उसी दिन से इन लोगों से मेरा इतना प्रेम हो गया कि इनके साथ रहने लगा।

मिस जोशी—आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कि आपका वृत्तान्त सुनकर मैं आपको क्या समझ रही हूँ?

आपटे—वही, जो मैं वास्तव में हूँ—नीच, कमीना, धूर्त......।

मिस जोशी—नहीं, आप मुझ पर फिर अन्याय कर रहे हैं। पहला अन्याय तो क्षमा कर सकती हूँ। यह अन्याय क्षमा नहीं कर सकती। इतनी प्रतिकूल दशाओं में पड़कर भी जिसका हृदय इतना पवित्र, इतना निष्कपट, इतना सदय हो वह आदमी नहीं, देवता है। भगवन्, आपने मुझ पर जो आक्षेप किये वह सत्य हैं। मैं आपके अनुमान से कहीं भ्रष्ट हूँ। मैं इस योग्य भी नहीं हूँ कि आपकी ओर ताक सकूँ। आपने अपने हृदय की विशालता दिखाकर मेरा असली स्वरूप मेरे सामने प्रकट कर दिया। मुझे क्षमा कीजिए, मुझ पर दया कीजिए।

यह कहते कहते वह उनके पैरों पर गिर पड़ी। आपटे ने उसे उठा लिया और बोले—मिस जोशी, ईश्वर के लिए मुझे लज्जित न कीजिए।

मिस जोशी ने गद्गद कण्ठ से कहा—आप इन दुष्टों के हाथ से मेरा उद्धार कीजिए, मुझे इस योग्य बनाइए कि आपकी विश्वास-पात्री बन सकूँ। ईश्वर साक्षी है कि मुझे कभी कभी अपनी दशा पर कितना दुख होता है। मैं बार बार चेष्टा करती हूँ कि अपनी दशा सुधारूँ, इस विलासिता के जाल को तोड़ दूँ, जो मेरी आत्मा को चारों तरफ़ से जकड़े हुए है, पर दुर्बल आत्मा अपने निश्चय पर स्थिर नहीं रहती। मेरा पालन-पोषण जिस ढंग से हुआ, उसका यह परिणाम होना स्वाभाविक-सा मालूम होता है। मेरी उच्च शिक्षा ने गृहिणी-जीवन से मेरे मन में घृणा पैदा कर दी।

मुझे किसी पुरुष के अधीन रहने का विचार अस्वाभाविक जान पड़ता था। मैं गृहिणी की जिम्मेदारियों और चिन्ताओं को अपनी मानसिक स्वाधीनता के लिए विष-तूल्य समझती थी। मैं तर्क-बुद्धि से अपनी स्त्रीत्व को मिटा देना चाहती थी, मैं पुरुषों की भाँति स्वतंत्र रहना चाहती थी। क्यों किसी की पाबन्द होकर रहूँ? क्यों अपनी इच्छाओं को किसी व्यक्ति के साँचे में ढालूँ? क्यों किसी को यह कहने का अधिकार दूँ कि तुमने यह क्यों किया, वह क्यों किया? दाम्पत्य मेरी निगाह में तुच्छ वस्तु थी। अपने माता-पिता पर आलोचना करनी मेरे लिए उचित नहीं, ईश्वर उन्हें सद्गति दे, उनकी राय किसी बात पर न मिलती थी। पिता विद्वान् थे, माता के लिए 'काला अच्छर भैंस बराबर' था। उनमें रात-दिन वाद-विवाद होता रहता था। पिताजी ऐसी स्त्री से विवाह हो जाना अपने जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य समझते थे। वह यह कहते कभी न थकते थे कि तुम मेरे पाँव की बेड़ी बन गई, नहीं तो मैं न-जाने कहाँ उड़कर पहुँचा होता। उनके विचार में सारा दोष माताजी की अशिक्षा के सिर था। वह अपनी एकमात्र पुत्री को मूर्खा माता के संसर्ग से दूर रखना चाहते थे। माता कभी मुझे कुछ कहतीं तो पिताजी उन पर टूट पड़ते—तुमसे कितनी बार कह चुका कि लड़की को डाटो मत, वह स्वयं अपना भला-बुरा सोच सकती है, तुम्हारे डाटने से उसके आत्म-सम्मान को कितना धक्का लगेगा, [illegible] नहीं जान सकतीं। आख़िर माताजी ने निराश होकर [illegible] हाल पर छोड़ दिया और कदाचित इसी शोक में चल

बसीं। अपने घर की अशांति देखकर मुझे विवाह से और भी घृणा हो गई। सबसे बड़ा असर मुझ पर मेरे कालेज की लेडी प्रिंसिपल का हुआ जो स्वयं अविवाहिता थीं। मेरा तो अब यह विचार है कि युवकों और युवतियों की शिक्षा का भार केवल आदर्श-चरित्रों पर रखना चाहिए। विलास में रत, शौक़ीन कालेजों के प्रोफेसर, विद्यार्थियों पर कोई अच्छा असर नहीं डाल सकते। मैं इस वक्त ऐसी बातें आपसे कर रही हूँ, पर अभी घर जाकर यह सब भूल जाऊँगी। मैं जिस संसार में हूँ, उसका जलवायु ही दूषित है। वहाँ सभी मुझे कीचड़ में लतपत देखना चाहते हैं, मेरे विलासासक्त रहने में ही उनका स्वार्थ है। आप वह पहले आदमी हैं जिसने मुझ पर विश्वास किया है, जिसने मुझसे निष्कपट व्यवहार किया है। ईश्वर के लिए अब मुझे भूल न जाइएगा।

आपटे ने मिस जोशी की ओर वेदनापूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—अगर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। मिस जोशी! हम सब मिट्टी के पुतले हैं, कोई निर्दोष नहीं। मनुष्य बिगड़ता है या तो परिस्थितियों से या पूर्वसंस्कारों से। परिस्थितियों से गिरनेवाला मनुष्य उन परिस्थितियों का त्याग करने ही से बच सकता है, संस्कारों से गिरनेवाले मनुष्य का मार्ग इससे कहीं कठिन है। आपकी आत्मा सुन्दर और पवित्र है, केवल परिस्थितियों ने उसे कुहरे की भाँति ढक लिया है। अब विवेक का सूर्य उदय हो गया है, ईश्वर ने चाहा तो कुहरा भी फट जायगा। लेकिन सबसे पहले उन परिस्थितियों को त्याग करने को तैयार हो जाइए।

मिस जोशी—यही आपको करना होगा।

आपटे ने चुभती हुई निगाहों से देखकर कहा—वैद्य रोगी को ज़बरदस्ती दवा पिलाता है।

मिस जोशी—मैं सब कुछ करूँगी। मैं कड़वी से कड़वी दवा पिऊँगी यदि आप पिलायेंगे। कल आप मेरे घर आने की कृपा करेंगे, शाम को?

आपटे—अवश्य आऊँगा।

मिस जोशी ने बिदा होते हुए कहा—भूलिएगा नहीं, मैं आपकी राह देखती रहूँगी। अपने रक्षक को भी लाइएगा।

यह कहकर उसने बालक को गोद में उठाया और उसे गले से लगाकर बाहर निकल आई।

गर्व के मारे उसके पाँव ज़मीन पर न पड़ते थे। मालूम होता था, हवा में उड़ी जा रही हूँ। प्यास से तड़पते हुए मनुष्य को नदी का तट नज़र आने लगा था।

(६)

दूसरे दिन प्रातःकाल मिस जोशी ने मेहमानों के नाम दावती कार्ड भेजे और उत्सव मनाने की तैयारियाँ करने लगी। मिस्टर आपटे के सम्मान में पार्टी दी जा रही थी। मिस्टर जौहरी ने कार्ड देखा तो मुसकिराये। अब महाशय इस जाल से बचकर कहाँ जायँगे? मिस जोशी ने उन्हें फँसाने की यह अच्छी तरकीब निकाली। इस काम में निपुण मालूम होती है। मैंने समझा था,

सोराबजी—आपने किस युनिवर्सिटी में शिक्षा पाई थी ?

आपटे—युनिवर्सिटी में शिक्षा पाई होती तो आज मैं भी शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष न होता !

मिसेज़ भरूचा—मैं तो आपको भयङ्कर जन्तु समझती थी।

आपटे ने मुसकिराकर कहा—आपने मुझे महिलाओं के सामने न देखा होगा।

सहसा मिस जोशी अपने सोने के कमरे में गई और अपने सारे वस्त्राभूषण उतार फेंके। उसके मुख से शुभ-संकल्प का तेज निकल रहा था। नेत्रों से दैवी ज्योति प्रस्फुटित हो रही थी, मानो किसी देवता ने उसे वरदान दिया हो। उसने सजे हुए कमरे को घृणा के नेत्रों से देखा, अपने आभूषणों को पैरों से ठुकरा दिया, और एक मोटी साफ़ साड़ी पहनकर बाहर निकली। आज प्रातः-काल ही उसने यह साड़ी मँगा ली थी।

उसे इस नये वेष में देखकर सब लोग चकित हो गये। यह काया-पलट कैसी ? सहसा किसी की आँखों को विश्वास न आया। किन्तु मिस्टर जौहरी बग़लें बजाने लगे। मिस जोशी ने इसे फँसाने के लिए यह कोई नया स्वाँग रँचा है।

मिस जोशी मेहमानों के सामने आकर बोली—

मित्रो ! आपको याद है, परसों महाशय आपटे ने मुझे कितनी गालियाँ दी थीं। यह महाशय खड़े हैं। आज मैं इन्हें उस दुर्व्य-वहार का दण्ड देना चाहती हूँ। मैं कल इनके मकान पर जाकर इनके जीवन के सारे गुप्त रहस्यों को जान आई। यह जो जनता

की भीड़ में गरजते-फिरते हैं, मेरे एक ही निशाने में गिर पड़े।"
मैं उन रहस्यों को खोलने में अब विलम्ब न करूँगी, आप लोग अधीर हो रहे होंगे। मैंने जो कुछ देखा, वह इतना भयंकर है कि उसका वृत्तान्त सुनकर शायद आप लोगों को मूर्च्छा आ जायगी। अब मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि यह महाशय पक्के विद्रोही हैं—

मिस्टर जौहरी ने ताली बजाई और तालियों से हाल गूँज उठा।

मिस जोशी—लेकिन राज के द्रोही नहीं, अन्याय के द्रोही, दमन के द्रोही, अभिमान के द्रोही—

चारों ओर सन्नाटा छा गया। लोग विस्मित होकर एक दूसरे की ओर ताकने लगे।

मिस जोशी—महाशय आपटे ने गुप्त रूप से शस्त्र जमा किये हैं, और गुप्त रूप से हत्याएँ की हैं........

मिस्टर जौहरी ने तालियाँ बजाईं और तालियों का दौंगड़ा फिर बरस गया।

मिस जोशी—लेकिन किसकी हत्या? दुख की, दरिद्रता की, प्रजा के कष्टों की, हठधर्मी की और अपने स्वार्थ की!

चारों ओर फिर सन्नाटा छा गया और लोग चकित हो होकर एक दूसरे की ओर ताकने लगे, मानो उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं है।

मिस जोशी—महाशय आपटे ने गुप्त रूप से डकैतियाँ की हैं और कर रहे हैं—

अब की किसी ने ताली न बजाई, लोग सुनना चाहते थे कि देखें आगे क्या कहती है।

उन्होंने मुझ पर भी हाथ साफ़ किया है, मेरा सब कुछ अपहरण कर लिया है, यहाँ तक कि अब मैं निराधार हूँ और उनके चरणों के सिवा मेरे लिए और कोई आश्रय नहीं है। प्राणाधार! इस अबला को अपने चरणों में स्थान दो, उसे डूबने से बचाओ। मैं जानती हूँ, तुम मुझे निराश न करोगे।

यह कहते कहते वह जाकर आपटे के चरणों पर गिर पड़ी। सारी मंडली स्तंभित रह गई!

(७)

एक सप्ताह गुज़र चुका था। आपटे पुलीस की हिरासत में थे। उन पर अभियोग चलाने की तैयारियाँ हो रही थीं। सारे प्रान्त में हलचल मचा हुआ था। नगर में रोज़ सभाएँ होती थीं, पुलीस रोज़ दस-पाँच आदमियों को पकड़ती थी। समाचारपत्रों में ज़ोरों के साथ वाद-विवाद हो रहा था।

रात के ९ बज गये थे। मिस्टर जौहरी राज-भवन में मेज़ पर बैठे हुए सोच रहे थे कि मिस जोशी को क्योंकर वापस लाऊँ! उसी दिन से उनकी छाती पर साँप लोटता रहा था। उसकी सूरत एक क्षण के लिए आँखों से न उतरती थी।

वह सोच रहे थे, इसने मेरे साथ ऐसी दग़ा की! मैंने इसके लिए क्या कुछ न किया। इसकी कौनसी इच्छा थी, जो मैंने पूरी नहीं की, और इसी ने मुझसे बेवफ़ाई की! नहीं, कभी नहीं, मैं इसके बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकता। दुनिया चाहे मुझे बदनाम करे, हत्यारा कहे, चाहे मुझे पद से हाथ धोना पड़े, लेकिन आपटे को न छोड़ूँगा। इस रोड़े को रास्ते से हटा दूँगा, इस काँटे को पहलू से निकाल बाहर करूँगा।

सहसा कमरे का द्वार खुला और मिस जोशी ने प्रवेश किया। मिस्टर जौहरी हकबकाकर कुरसी पर से उठ खड़े हुए और यह सोचकर कि शायद मिस जोशी उधर से निराश होकर मेरे पास आई है, कुछ रूखे, लेकिन नम्र भाव से बोले—आओ बाला, तुम्हारी ही याद में बैठा था। तुम कितनी ही बेवफ़ाई करो, पर तुम्हारी याद मेरे दिल से नहीं निकल सकती।

मिस जोशी—आप केवल ज़बान से कहते हैं।

मिस्टर जौहरी—क्या दिल चीरकर दिखा दूँ?

मिस जोशी—प्रेम प्रतिकार नहीं करता, प्रेम में दुराग्रह नहीं होता। आप मेरे खून के प्यासे हो रहे हैं, उस पर भी आप कहते हैं मैं तुम्हारी याद करता हूँ। आपने मेरे स्वामी को हिरासत में डाल रक्खा है, यह प्रेम है! आख़िर आप मुझसे क्या चाहते हैं? अगर आप समझ रहे हों कि इन सख्तियों से डरकर मैं आपकी शरण आ जाऊँगी तो आपका भ्रम है। आपको अख़्तियार है कि आपटे को काले पानी भेज दें, फाँसी पर चढ़ा दें, लेकिन इसका

मुझ पर कोई असर न होगा। वह मेरे स्वामी हैं, मैं उनको अपना स्वामी समझती हूँ। उन्होंने अपनी विशाल उदारता से मेरा उद्धार किया। आप मुझे विषय के फन्दों में फँसाते थे मेरी आत्मा को कलुषित करते थे। कभी आपको यह ख़याल आया कि इसकी आत्मा पर क्या बीत रही होगी! आप मुझे आत्म-शून्य समझते थे। इस देव-पुरुष ने अपनी निर्मल, स्वच्छ आत्मा के आकर्षण से मुझे पहली ही मुलाक़ात में खींच लिया। मैं उसकी हो गई और मरते दम तक उसी की रहूँगी। उस मार्ग से अब आप मुझे नहीं हटा सकते। मुझे एक सच्ची आत्मा की ज़रूरत थी। वह मुझे मिल गई। उसे पाकर अब तीनों लोक की सम्पदा मेरी आँखों में तुच्छ है। मैं उनके वियोग में चाहे प्राण दे दूँ, पर आपके काम नहीं आ सकती!

मिस्टर जौहरी—मिस जोशी! प्रेम उदार नहीं होता, क्षमाशील नहीं होता। मेरे लिए तुम सर्वस्व हो जब तक मैं समझता हूँ कि तुम मेरी हो। अगर तुम मेरी नहीं हो सकतीं तो मुझे इसकी क्या चिन्ता हो सकती है कि तुम किस दशा में हो?

मिस जोशी—यह आपका अंतिम निश्चय है?

मिस्टर जौहरी—अगर मैं कह दूँ कि हाँ तो?

मिस जोशी ने सीने से पिस्तौल निकालकर कहा—तो पहले आपकी लाश जमीन पर फड़कती होगी और आपके बाद मेरी। बोलिए यह आपका अंतिम निश्चय है?

यह कहकर मिस जोशी ने जौहरी की तरफ़ पिस्तौल सीधा किया। जौहरी कुरसी से उठ खड़े हुए और मुस्किराकर बोले—

क्या तुम मेरे लिये कभी इतना साहस कर सकती थीं? कदापि नहीं। अब मुझे विश्वास हो गया कि मैं तुम्हें नहीं पा सकता। जाओ, तुम्हारा आपटे तुम्हें मुबारक हो। उस पर से अभियोग उठा लिया जायगा। पवित्र प्रेम ही में यह साहस है! अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हारा प्रेम पवित्र है। अगर कोई पुराना पापी भविष्य-वाणी कर सकता है तो मैं कहता हूँ वह दिन दूर नहीं है जब तुम इस भवन की स्वामिनी होगी। आपटे ने मुझे प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं, राजनीति के क्षेत्र में भी परास्त कर दिया। सच्चा आदमी एक मुलाक़ात में ही जीवन को बदल सकता है, आत्मा को जगा सकता है और अज्ञान को मिटाकर प्रकाश की ज्योति फैला सकता है, यह आज सिद्ध हो गया!

नरक का मार्ग

(१)

रात 'भक्तमाल' पढ़ते पढ़ते न-जाने कब नींद आ गई। कैसे कैसे महात्मा थे, जिनके लिए भगवत्-प्रेम ही सब कुछ था, इसी में मग्न रहते थे। ऐसी भक्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। क्या मैं वह तपस्या नहीं कर सकती! इस जीवन में और कौनसा सुख रक्खा है! आभूषणों से जिसे प्रेम हो वह जाने, यहाँ तो इनको देखकर आँखें फूटती हैं, धन-दौलत पर जो प्राण देता हो वह जाने, यहाँ तो इसका नाम सुनकर ज्वर-सा चढ़ आता है। कल पगली सुशीला ने कितनी उमंगों से मेरा शृंगार किया था, कितने प्रेम से बालों में फूल गूँथे थे। कितना मना करती रही, न मानी। आखिर वही हुआ जिसका मुझे भय था। जितनी देर उसके साथ हँसी थी, उससे कहीं ज्यादा रोई। संसार में ऐसी भी कोई स्त्री है, जिसका पति उसका शृंगार देखकर सिर से पाँव तक जल उठे! कौन ऐसी स्त्री है जो अपने पति के मुँह से ये शब्द सुने—तुम मेरा परलोक बिगाड़ोगी, और कुछ नहीं, तुम्हारे रंग-ढंग कहे देते हैं—और उसका दिल विष खा लेने को न चाहे। भगवन्, संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं। आखिर मैं नीचे चली गई और 'भक्तमाल' पढ़ने लगी। अब वृन्दावन-विहारी ही

सेवा करूँगी, इन्हीं को अपना शृंगार दिखाऊँगी, वह तो देखकर न जलेंगे, वह तो मेरे मन का हाल जानते हैं!

(२)

भगवान्! मैं अपने मन को कैसे समझाऊँ! तुम अन्तर्यामी हो, तुम मेरे रोम रोम का हाल जानते हो। मैं चाहती हूँ कि उन्हें अपना इष्ट समझूँ, उनके चरणों की सेवा करूँ, उनके इशारे पर चलूँ, उन्हें मेरी किसी बात से, किसी व्यवहार से, नाममात्र भी दुख न हो। वह निर्दोष हैं, जो कुछ मेरे भाग्य में था वह हुआ, उनका दोष है, न माता-पिता का, सारा दोष मेरे नसीबों ही का है। लेकिन यह सब जानते हुए भी जब उन्हें आते देखती हूँ तो मेरा दिल बैठ जाता है, मुँह पर मुरदनी-सी छा जाती है, सिर भारी हो जाता है, जी चाहता है, इनकी सूरत न देखूँ, बात तक करने को जी नहीं चाहता; कदाचित् शत्रु को भी देखकर किसी का मन इतना क्लांत न होता होगा! उनके आने के समय दिल में धड़कन-सी होने लगती है। दो-एक दिन के लिए कहीं चले जाते हैं तो दिल पर से एक बोझ-सा उठ जाता है, हँसती भी हूँ, बोलती भी हूँ, जीवन में कुछ आनन्द आने लगता है, लेकिन उनके आने का समाचार पाते ही फिर चारों ओर अंधकार! चित्त की ऐसी दशा क्यों है, यह मैं नहीं कह सकती। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि पूर्व-जन्म में हम दोनों में वैर था, उसी वैर का बदला लेने के लिए इन्होंने मुझसे विवाह किया है, वही पुराने संस्कार हमारे मन में बने हुए हैं। नहीं तो वह मुझे देख देखकर

क्यों जलते और मैं उनकी सूरत से क्यों घृणा करती। विवाह करने का तो यह मतलब नहीं हुआ करता! मैं अपने घर इससे कहीं सुखी थी। कदाचित् मैं जीवन पर्यन्त अपने घर आनन्द से रह सकती थी! लेकिन इस लोक-प्रथा का बुरा हो, जो अभागिनी कन्याओं को किसी न किसी पुरुष के गले बाँध देना अनिवार्य समझता है। वह क्या जानता है कि कितनी युवतियाँ उसके नाम को रो रही हैं, कितने अभिलाषाओं से लहराते हुए, कोमल हृदय उसके पैरों तले रौंदे जा रहे हैं! युवती के लिए पति कैसी कैसी मधुर कल्पनाओं का स्रोत होता है, पुरुष में जो उत्तम है, श्रेष्ठ है, दर्शनीय है, उसकी सजीव मूर्ति इस शब्द के ध्यान में आते ही उसकी नज़रों के सामने आकर खड़ी हो जाती है! लेकिन मेरे लिए यह शब्द क्या है? हृदय में उठनेवाला शूल, कलेजे में खटकनेवाला काँटा, आँखों में गड़नेवाली किरकिरी, अंतःकरण को बेधनेवाला व्यंग्य-बाण! सुशीला को हमेशा हँसते देखती हूँ। वह कभी अपनी दरिद्रता का गिला नहीं करती; गहने नहीं हैं, कपड़े नहीं हैं, भाड़े के नन्हे से मकान में रहती है, अपने हाथों घर का सारा काम-काज करती है, फिर भी उसे रोते नहीं देखती। अगर अपने बस की बात होती तो आज अपने धन को उसकी दरिद्रता से बदल लेती। अपने पति-देव को मुसकिराते हुए घर में आते देखकर उसका सारा दुख-दारिद्रय छू-मंत्र हो जाता है, छाती गज़भर की हो जाती है। उनके एक प्रेमालिंगन में वह सुख है जिस पर तीनों लोक का धन न्योछावर कर दूँ!

(३)

आज मुझसे जब्त न हो सका। मैंने पूछा—तुमने मुझसे किस लिए विवाह किया था। यह प्रश्न महीनों से मेरे मन में उठता था पर मन को रोकती चली आती थी। आज प्याला छलक पड़ा। यह प्रश्न सुनकर कुछ बौखला-से गये, बग़लें झाँकने लगे, खीसें निकालकर बोले—घर सँभालने के लिए, गृहस्थी का भार उठाने के लिए, और नहीं क्या भोग-विलास के लिए? घरनी के बिना यह घर आपको भूत का डेरा-सा मालूम होता था। नौकर-चाकर घर की संपत्ति उड़ाये देते थे, जो चीज़ जहाँ पड़ी रहती थी वहीं पड़ी रहती थी, कोई उसको देखनेवाला न था। तो अब मालूम हुआ कि मैं इस घर की चौकसी करने के लिए लाई गई हूँ। मुझे इस घर की रक्षा करनी चाहिए और अपने को धन्य-भाग्य समझना चाहिए कि यह सारी संपत्ति मेरी है। मुख्य वस्तु संपत्ति है, मैं तो केवल चौकीदारिन हूँ। ऐसे घर में आज ही आग लग जाय! अब तक तो मैं अनजान में घर की चौकसी करती थी, जितना वह चाहते हैं उतना न सही, पर अपनी बुद्धि के अनुसार अवश्य करती थी। आज से किसी चीज़ को भूलकर भी छूने की क़सम खाती हूँ। यह मैं जानती हूँ कि कोई पुरुष घर की चौकसी के लिए विवाह नहीं करता और इन महाशय ने चिढ़कर यह बात मुझसे कही। लेकिन सुशीला ठीक कहती है, इन्हें स्त्री के बिना घर सूना लगता होगा, उसी तरह जैसे पिंजरे में चिड़िया को न देखकर पिंजरा सूना लगता है। यह है हम स्त्रियों का भाग्य!

(४)

मालूम नहीं,इन्हें मुझ पर इतना सन्देह क्या होता है। जब से नसीब इस घर में लाया है इन्हें बराबर संदेह-मूलक कटाक्ष करते देखती हूँ। क्या कारण है ? ज़रा बाल गुँथवा कर बैठी और यह ओठ चबाने लगे। कहीं जाती नहीं, कहीं आती नहीं, किसी से बोलती नहीं; फिर भी इतना संदेह ! यह अपमान असह्य है । क्या मुझे अपनी आबरू प्यारी नहीं ! यह मुझे इतनी छिछोरी क्यों समझते हैं, इन्हें मुझ पर संदेह करते लज्जा भी नहीं आती ? काना आदमी किसी को हँसते देखता है तो समझता है लोग मुझी पर हँस रहे हैं। शायद इन्हें भी यही वहम हो गया है कि मैं इन्हें चिढ़ाती हूँ। अपने अधिकार के बाहर कोई काम कर बैठने से कदाचित् हमारे चित्त की यही वृत्ति हो जाती है। भिक्षुक राजा की गद्दी पर बैठकर चैन की नींद नहीं सो सकता। उसे अपने चारों तरफ़ शत्रु ही शत्रु दिखाई देंगे। मैं समझती हूँ, सभी शादी करनेवाले बुड्ढों का यही हाल है !

आज सुशीला के कहने से मैं ठाकुरजी की झाँकी देखने जा रही थी। अब यह साधारण बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है कि फूहड़ बहू बनकर बाहर निकलना अपनी हँसी उड़ाना है, लेकिन आप उसी वक्त न-जाने किधर से टपक पड़े और मेरी ओर तिरस्कार-पूर्ण नेत्रों से देखकर बोले—कहाँ की तैयारी है ?

मैंने कह दिया जरा ठाकुरजी की झाँकी देखने जाती हूँ। इतना सुनते ही त्योरियाँ चढ़ाकर बोले—तुम्हारी जाने की कुछ

ज़रूरत नहीं। जो स्त्री अपने पति की सेवा नहीं कर सकती, उसे देवतों के दर्शन से पुण्य के बदले पाप होता है। मुझसे उड़ने चली हो! मैं औरतों की नस नस पहचानता हूँ।

ऐसा क्रोध आया कि बस अब क्या कहूँ। उसी दम कपड़े बदल डाले और प्रण कर लिया कि अब कभी दर्शन करने न जाऊँगी। इस अविश्वास का भी कुछ ठिकाना है! न-जाने क्या सोचकर रुक गई। उनकी बात का जवाब तो यही था कि उसी क्षण घर से चल खड़ी होती, फिर देखती मेरा क्या कर लेते!

इन्हें मेरे उदास और विमन रहने पर आश्चर्य होता है। मुझे मन में कृतघ्न समझते हैं। अपनी समझ में इन्होंने मेरे साथ विवाह करके शायद मुझ पर बड़ा एहसान किया है। इतनी बड़ी जायदाद और इतनी विशाल संपत्ति की स्वामिनी होकर मुझे फूले न समाना चाहिए था, आठों पहर इनका यश-गान करते रहना चाहिए था। मैं यह सब कुछ न करके उलटे और मुँह लटकाये रहती हूँ। कभी कभी मुझे बेचारे पर दया आती है। यह नहीं समझते कि नारी-जीवन में कोई ऐसी वस्तु भी है जिसे खोकर उसकी आँखों में स्वर्ग भी नरक-तुल्य हो जाता है!

(५)

तीन दिन से बीमार हैं! डाक्टर कहते हैं, बचने की कोई आशा नहीं, निमोनिया हो गया है। पर मुझे न-जाने क्यों इसका ग़म नहीं है। मैं इतनी वज्रहृदया कभी न थी। न-जाने वह मेरी कोमलता कहाँ चली गई। किसी बीमार की सूरत देखकर मेरा हृदय करुणा

से चंचल हो जाता था, मैं किसी का रोना नहीं सुन सकती थी। वही मैं हूँ कि आज तीन दिन से उन्हें अपने बग़ल के कमरे में पड़े कराहते सुनती हूँ और एक वार भी उन्हें देखने न गई, आँख में आँसू आने का ज़िक्र ही क्या। मुझे ऐसा मालूम होता है इनसे मेरा कोई नाता ही नहीं। मुझे चाहे कोई पिशाचिनी कहे, चाहे कुलटा, पर मुझे तो यह कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि इनकी बीमारी से मुझे एक प्रकार का ईर्षामय आनन्द आ रहा है। इन्होंने मुझे यहाँ कारावास दे रक्खा था—मैं इसे विवाह का पवित्र नाम नहीं देना चाहती—यह कारावास ही है। मैं इतनी उदार नहीं हूँ कि जिसने मुझे कैद में डाल रक्खा हो उसकी पूजा करूँ, जो मुझे लात से मारे उसके पैरों को चूमूँ। मुझे तो मालूम हो रहा है, ईश्वर इन्हें इस पाप का दण्ड दे रहे हैं। मैं निस्संकोच होकर कहती हूँ कि मेरा इनसे विवाह नहीं हुआ। स्त्री किसी के गले बाँध दिये जाने से ही उसकी विवाहिता नहीं हो जाती। वही संयोग विवाह का पद पा सकता है जिसमें कम से कम एक बार तो हृदय प्रेम से पुलकित हो जाय! सुनती हूँ महाशय अपने कमरे में पड़े पड़े मुझे कोसा करते हैं, अपनी बीमारी का सारा बुख़ार मुझ पर निकालते हैं, लेकिन यहाँ इसकी परवा नहीं। जिसका जी चाहे जायदाद ले, धन ले, मुझे इसकी ज़रूरत नहीं!

(६)

आज तीन महीने हुए, मैं विधवा हो गई, कम से कम लोग यही कहते हैं। जिसका जो जी चाहे कहे, पर मैं अपने को जो

कुछ समझती हूँ वह समझती हूँ। मैंने चूड़ियाँ नहीं तोड़ीं, क्यों तोड़ूँ? माँग में सेंदुर पहले भी न डालती थी, अब भी नहीं डालती। बूढ़े बाबा का क्रिया-क्रर्म उनके सुपुत्र ने किया, मैं पास न फटकी। घर में मुझ पर मनमानी आलोचनाएँ होती हैं, कोई मेरे गूँथे हुए बालों को देखकर नाक सिकोड़ता है, कोई मेरे आभूषणों पर आँखें मटकाता है, यहाँ इसकी चिन्ता नहीं। इन्हें चिढ़ाने को मैं भी रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियाँ पहनती हूँ, और भी बनती-सँवरती हूँ, मुझे ज़रा भी दुख नहीं है। मैं तो कैद से छूट गई। इधर कई दिन सुशीला के घर गई। छोटा-सा मकान है, कोई सजावट न सामान, चार-पाइयाँ तक नहीं, पर सुशीला कितने आनन्द से रहती है। उसका उल्लास देखकर मेरे मन में भी भाँति भाँति की कल्पनाएँ उठने लगती हैं—उन्हें कुत्सित क्यों कहूँ, जब मेरा मन उन्हें कुत्सित नहीं समझता। इनके जीवन में कितना उत्साह है, आँखें मुसकिराती रहती हैं, ओठों पर मधुर हास्य खेलता रहता है, बातों में प्रेम का स्रोत बहता हुआ जान पड़ता है। इस आनन्द से, चाहे वह कितना ही क्षणिक हो, जीवन सफल हो जाता है, फिर उसे कोई भूल नहीं सकता, उसकी स्मृति अंत तक के लिए काफ़ी हो जाती है, इस मिज़राब की चोट हृदय के तारों को अंत-काल तक मधुर स्वरों से कंपित रख सकती है!

एक दिन मैंने सुशीला से कहा—अगर तेरे पतिदेव कहीं पर-देश चले जायँ तो तू रोते रोते मर जायगी।

सुशीला गंभीर भाव से बोली—नहीं बहन, मरूँगी नहीं,

उनकी याद मुझे सदैव प्रफुल्लित करती रहेगी, चाहे उन्हें परदेश में बरसों लग जायें !

मैं यही प्रेम चाहती हूँ, इसी चोट के लिए मेरा मन तड़पता रहता है, मैं भी ऐसी ही स्मृति चाहती हूँ जिससे दिल के तार सदैव बजते रहें, जिसका नशा नित्य छाया रहे !

(७)

रात रोते रोते हिचकियाँ बँध गईं। न-जाने क्यों दिल भर भर आता था। अपना जीवन सामने एक बीहड़ मैदान की भाँति फैला हुआ मालूम होता था, जहाँ बगूलों के सिवा हरियाली का नाम नहीं ! घर फाड़े खाता था, चित्त ऐसा चंचल हो रहा था कि कहीं उड़ जाऊँ। आजकल भक्ति के ग्रन्थों की ओर ताकने का जी नहीं चाहता, कहीं सैर करने जाने की भी इच्छा नहीं होती, क्या चाहती हूँ, यह मैं स्वयं नहीं जानती। लेकिन मैं जो नहीं जानती वह मेरा एक एक रोम जानता है, मैं अपनी भावनाओं की सजीव मूर्ति हूँ, मेरा एक एक अंग मेरी आंतरिक वेदना का आर्त-नाद हो रहा है !

(८)

मेरे चित्त की चञ्चलता उस अंतिम दशा को पहुँच गई है, जब मनुष्य को निन्दा की न लज्जा रहती और न भय। जिन लोभी, स्वार्थी माता-पिता ने मुझे कुएँ में ढकेला, जिस पाषाण-हृदय प्राणी ने मेरी माँग में सेंदुर डालने का स्वाँग किया, उनके प्रति मेरे मन में बार बार दुष्कामनाएँ उठती हैं, मैं उन्हें लज्जित करना चाहती

मैं अपने मुँह में कालिख लगाकर उनके मुख में कालिख लगाना चाहती हूँ। मैं अपने प्राण देकर उन्हें प्राण-दण्ड दिलाना चाहती हूँ। मेरा नारीत्व लुप्त हो गया है, मेरे हृदय में प्रचण्ड ज्वाला उठी हुई है।

घर के सारे आदमी सो रहे थे। मैं चुपके से नीचे उतरी, द्वार खोला और घर से निकली; जैसे कोई प्राणी गरमी से व्याकुल होकर घर से निकले और किसी खुली हुई जगह की ओर दौड़े। उस मकान में मेरा दम घुट रहा था।

सड़क पर सन्नाटा था, दूकानें बन्द हो चुकी थीं। सहसा एक बुढ़िया आती हुई दिखाई दी। मैं डरी कि कहीं चुड़ैल न हो। बुढ़िया ने मेरे समीप आकर मुझे सिर से पाँव तक देखा, और बोली—किसकी राह देख रही हो?

मैंने चिढ़कर कहा—मौत की?

बुढ़िया—तुम्हारे नसीबों में तो अभी ज़िन्दगी के बड़े बड़े सुख भोगने लिखे हैं। अँधेरी रात गुज़र गई, आसमान पर सुबह की रोशनी नज़र आ रही है!

मैंने हँसकर कहा—अँधेरे में भी तुम्हारी आँखें इतनी तेज़ हैं कि नसीबों की लिखावट पढ़ लेती हैं?

बुढ़िया—आँखों से नहीं पढ़ती बेटा, अक्ल से पढ़ती हूँ, धूप में चूँडे नहीं सुफेद किये हैं। तुम्हारे बुरे दिन गये और अच्छे दिन आ रहे हैं। हँसो मत बेटा, यही काम करते इतनी उम्र गुज़र गई। इसी बुढ़िया की बदौलत जो नदी में कूदने जा रही थीं, वे आज

[illegible] की सेज पर सो रही हैं जो ज़हर का प्याला पीने को तैयार थीं वे आज दूध की कुल्लियाँ कर रही हैं। इसी लिए इतनी रात गये निकलती हूँ कि अपने हाथों किसी अभागिनी का उद्धार हो सके तो करूँ। किसी से कुछ नहीं माँगती, भगवान् का दिया सब कुछ घर में है, केवल यही इच्छा है कि अपने से जहाँ तक हो सके दूसरों का उपकार करूँ। जिन्हें धन की इच्छा है उन्हें धन, जिन्हें सन्तान की इच्छा है उन्हें सन्तान, बस और क्या कहूँ, वह मन्त्र बता देती हूँ कि जिसकी जो इच्छा हो वह पूरी हो जाय।

मैंने कहा—मुझे न धन चाहिए, न सन्तान, मेरी मनोकामना तुम्हारे बस की बात नहीं।

बुढ़िया हँसी—बेटी, जो तुम चाहती हो वह मैं जानती हूँ, तुम वह चीज़ चाहती हो जो संसार में होते हुए स्वर्ग की है, जो देवतों के वरदान से भी ज्यादा आनन्दप्रद है, जो आकाश-कुसुम है, गूलर का फूल है और अमावस का चाँद है। लेकिन मेरे मन्त्र में वह शक्ति है जो भाग्य को भी सँवार सकती है। तुम प्रेम की प्यासी हो, मैं तुम्हें उस नाव पर बैठा सकती हूँ जो प्रेम के सागर में, प्रेम की तरङ्गों पर क्रीड़ा करती हुई तुम्हें पार उतार दे।

मैंने उत्कंठित होकर पूछा—माता तुम्हारा घर कहाँ है?

बुढ़िया—बहुत नज़दीक है बेटी, तुम चलो तो मैं अपनी आँखों पर बैठाकर ले चलूँ।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यह कोई आकाश की देवी हैं। इसके पीछे पीछे चल पड़ी।

(९)

आह ! वह बुढ़िया जिसे मैं आकाश की देवी समझती थी, नरक की डाइन निकली। मेरा सर्वनाश हो गया। मैं अमृत खोजती थी, विष मिला ; निर्मल स्वच्छ प्रेम की प्यासी थी, गंदे, विषाक्त नाले में गिर पड़ी। वह दुर्लभ वस्तु न मिलनी थी, न मिली। मैं सुशीला का-सा सुख चाहती थी, कुलटाओं की विषय-वासना नहीं। लेकिन जीवन-पथ में एक बार उलटी राह चलकर फिर सीधे मार्ग पर आना कठिन है !

लेकिन मेरे अधःपतन का अपराध मेरे सिर नहीं, मेरे माता-पिता और उस बूढ़े पर है जो मेरा स्वामी बनना चाहता था। मैं यह पंक्तियाँ न लिखती, लेकिन इस विचार से लिख रही हूँ कि मेरी आत्म-कथा पढ़कर शायद लोगों की आँखें खुलें ; मैं फिर कहती हूँ, अब भी अपनी बालिकाओं के लिए मत देखो धन, मत देखो जायदाद, मत देखो कुलीनता,केवल वर देखो। अगर उसके लिए जोड़ का वर नहीं पा सकते तो लड़की को क्वाँरी रख छोड़ो, ज़हर देकर मार डालो, गला घोट डालो, पर किसी बूढ़े खूसट से मत ब्याहो। स्त्री सब कुछ सह सकती है, दारुण से दारुण दुख, बड़े से बड़ा संकट—अगर नहीं सह सकती तो अपने यौवन-काल की उमङ्गों का कुचला जाना !

रही मैं, मेरे लिए अब इस जीवन में कोई आशा नहीं। इस अधम दशा को भी मैं उस दशा से न बदलूँगी जिससे निकलकर आई हूँ !!

स्त्री और पुरुष

(१)

विपिन बाबू के लिए स्त्री ही संसार की सबसे सुन्दर वस्तु थी। वह कवि थे और उनकी कविता के लिए स्त्रियों के रूप और यौवन की प्रशंसा ही सबसे चित्ताकर्षक विषय था। उनकी दृष्टि में स्त्री विराट् जगत् में व्याप्त कोमलता, माधुर्य और अलंकार की सजीव प्रतिमा थी। ज़बान पर स्त्री का नाम आते ही उनकी आँखें जगमगा उठती थीं, कान खड़े हो जाते थे, मानो किसी रसिक ने गान की आवाज़ सुन ली हो। जब से होश सँभाला, तभी से उन्होंने उस सुन्दरी की कल्पना करनी शुरू की जो उनके हृदय की रानी होगी; उसमें ऊषा की प्रफुल्लता होगी, पुष्प की कोमलता, कुन्दन की चमक, वसंत की छवि, कोयल की ध्वनि—वह कवि-वर्णित सभी उपमाओं से विभूषित होगी। वह उस कल्पित मूर्ति के उपासक थे, कविताओं में उसका गुण गाते, मित्रों से उसकी चरचा करते, नित्य उसी के ख़याल में मस्त रहते थे। वह दिन भी समीप आ गया था जब उनकी आशाएँ हरे हरे पत्तों से लहरायेंगी, उनकी मुरादें पूरी होंगी। कालेज की अन्तिम परीक्षा समाप्त हो गई थी और विवाह के सन्देशे आने लगे थे।

(२)

विवाह तय हो गया। विपिन बाबू ने कन्या को देखने का बहुत आग्रह किया, लेकिन जब उनके मामूँ ने विश्वास दिलाया कि लड़की बहुत ही रूपवती है, मैंने उसे अपनी आँखों से देखा है, तब वह राज़ी हो गये। धूमधाम से बरात निकली, और विवाह का मुहूर्त आया। वधू आभूषणों से सजी हुई मण्डप में आई तो विपिन को उसके हाथ-पाँव नज़र आये। कितनी सुन्दर उङ्गलियाँ थीं, मानो दीप-शिखाएँ हों, अङ्गों की शोभा कितनी मनोहारिणी थी! विपिन फूले न समाये। दूसरे दिन वधू बिदा हुई तो वह उसके दर्शनों के लिए इतने अधीर हुए कि ज्यों ही रास्ते में कहारों ने पालकी रखकर मुँह-हाथ धोना शुरू किया आप चुपके से वधू के पास जा पहुँचे। वह घूँघट हटाये, पालकी से सिर निकाले बाहर झाँक रही थी। विपिन की निगाह उस पर पड़ गई। घृणा, क्रोध और निराशा की एक लहर-सी उन पर दौड़ गई। यह वह परम सुन्दरी रमणी न थी जिसकी उन्होंने कल्पना की थी, जिसकी वह बरसों से कल्पना कर रहे थे—यह एक चौड़े मुँह, चिपटी नाक, और फूले हुए गालोंवाली कुरूपा स्त्री थी। रङ्ग गोरा था, पर उसमें लाली के बदले सुफेदी थी; और फिर रङ्ग कैसा ही सुन्दर हो, रूप की कमी नहीं पूरी कर सकता। विपिन का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया—हा! इसे मेरे ही गले पड़ना था, क्या इसके लिए समस्त संसार में और कोई न मिलता था! उन्हें अपने मामूँ पर क्रोध आया जिसने वधू की तारीफों के पुल

बाँध दिये थे। अगर इस वक्त वह मिल जाते तो विपिन उनकी ऐसी खबर लेता कि वह भी याद करते।

जब कहारों ने फिर पालकियाँ उठाईं तो विपिन मन में सोचने लगा, इस स्त्री के साथ मैं कैसे बोलूँगा, कैसे उसके साथ जीवन काटूँगा। उसकी ओर तो ताकने ही से घृणा होती है! ऐसी कुरूपा स्त्रियाँ भी संसार में हैं, इसका मुझे अब तक पता न था। क्या मुँह ईश्वर ने बनाया है, क्या आँखें हैं! मैं और सारे ऐबों की ओर से आँखें बन्द कर लेता, लेकिन यह चौड़ा-सा मुँह। भगवन्! क्या तुम्हें मुझी पर यह वज्राघात करना था?

(३)

विपिन को अपना जीवन नरक-सा जान पड़ता था। वह अपने मामूँ से लड़ा, ससुर को एक लम्बा खर्रा लिखकर फटकारा, माँ-बाप से हुज्जत की और जब इससे शांति न हुई तो कहीं भाग जाने की बात सोचने लगा। आशा पर उसे दया अवश्य आती थी, वह अपने को समझाता कि इसमें उस बेचारी का क्या दोष है। उसने ज़बरदस्ती तो मुझसे विवाह किया नहीं। लेकिन यह दया और यह विचार उस घृणा को न जीत सकता था जो आशा को देखते ही उसके रोम रोम में व्याप्त हो जाती थी। आशा अपने अच्छे से अच्छे कपड़े पहनती, तरह तरह से बाल सँवारती, घण्टों आइने के सामने खड़ी होकर अपना शृङ्गार करती, लेकिन विपिन को यह शुतुरग़मजे से मालूम होते। वह दिल से चाहती थी कि इन्हें प्रसन्न करूँ, उनके सेवा करने के लिए अवसर खोजा करती

थी, लेकिन विपिन उससे भागा भागा फिरता था। अगर कभी भेंट हो भी जाती तो कुछ ऐसी जली-कटी बातें करने लगता कि आशा रोती हुई वहाँ से चली जाती!

सबसे बुरी बात यह थी कि उसका चरित्र भ्रष्ट होने लगा। वह यह भूल जाने की चेष्टा करने लगा कि मेरा विवाह हो गया है। कई कई दिनों तक आशा को उसके दर्शन भी न होते। वह उसके क़हक़हे की आवाजें बाहर से आती हुई सुनती, झरोखे से देखती कि वह दोस्तों के गले में हाथ डाले सैर करने जा रहे हैं, और तड़पकर रह जाती!

एक दिन खाना खाते समय उसने कहा—अब तो आपके दर्शन ही नहीं होते। क्या मेरे कारण घर छोड़ दीजिएगा क्या?

विपिन ने मुँह फेरकर कहा—घरही पर तो रहता हूँ। आजकल ज़रा नौकरी की तलाश है, इस लिए दौड़-धूप ज्यादा करनी पड़ती है।

आशा—किसी डाक्टर से मेरी सूरत क्यों नहीं बनवा देते? सुनती हूँ, आजकल सूरत बनानेवाले डाक्टर पैदा हुए हैं।

विपिन—क्यों नाहक़ चिढ़ाती हो, यहाँ तुम्हें किसने बुलाया था?

आशा—आख़िर इस मरज़ की दवा कौन करेगा?

विपिन—इस मरज़ की दवा नहीं है। जो काम ईश्वर से न करते बना, उसे आदमी क्या बना सकता है?

आशा—यह तो तुम्हीं सोचो कि ईश्वर की भूल के लिए मुझे दण्ड दे रहे हो। संसार में कौन ऐसा आदमी है जिसे अच्छी

सूरत बुरी लगती हो, लेकिन तुमने किसी मर्द को केवल रूप-हीन होने के कारण क्वाँरा रहते देखा है! रूप-हीन लड़कियाँ भी माँ-बाप के घर नहीं बैठी रहतीं। किसी न किसी तरह उनका निर्वाह हो ही जाता है। उनका पति उन पर प्राण न देता हो, लेकिन दूध की मक्खी नहीं समझता।

विपिन ने झुँझलाकर कहा—क्यों नाहक़ सिर खाती हो, मैं तुमसे बहस तो नहीं कर रहा हूँ। दिल पर जब्र नहीं किया जा सकता, और न दलीलों का उस पर कोई असर पड़ सकता है। मैं तुम्हें कुछ कहता तो नहीं हूँ, फिर तुम क्यों मुझसे हुज्जत करती हो?

आशा यह झिड़की सुनकर चली गई। उसे मालूम हो गया कि इन्होंने मेरी ओर से सदा के लिए हृदय कठोर कर लिया है!

(४)

विपिन तो रोज़ सैर-सपाटे करते, कभी कभी रात रात-भर ग़ायब रहते, इधर आशा चिन्ता और नैराश्य से घुलते घुलते बीमार पड़ गई। लेकिन विपिन भूलकर भी उसे देखने न जाता, सेवा करना तो दूर रहा। इतना ही नहीं, वह दिल में मनाता था कि यह मर जाती तो गला छूटता, अब की ख़ूब देख-भालकर अपनी पसन्द का विवाह करता।

अब वह और भी खुल खेला। [illegible] से कुछ दबता था, कम से कम उसे यह धड़का लगा रहता [illegible] कि कोई मेरी चाल-ढाल पर निगाह रखनेवाला भी है। अब [illegible] धड़का छूट गया।

ऐसा लिप्त हो गया कि मरदाने कमरे में ही जमघटे होने लगे। लेकिन विषय-भोग में धन ही का सर्वनाश नहीं होता। इससे कहीं अधिक बुद्धि और बल का सर्वनाश होता है। विपिन का चेहरा पीला पड़ने लगा, देह भी क्षीण होने लगी, पसलियों की हड्डियाँ निकल आईं, आँखों के इर्द-गिर्द गढ़े पड़ गये। अब वह पहले से कहीं ज्यादा शौक करता, नित्य तेल लगाता, बाल बनवाता, कपड़े बदलता, किन्तु मुख पर कान्ति न थी, रङ्ग-रोगन से क्या हो सकता था।

एक दिन आशा बरामदे में चारपाई पर लेटी हुई थी। इधर हफ़्तों से उसने विपिन को न देखा था। उन्हें देखने की इच्छा हुई। उसे भय था कि वह न आयेंगे, फिर भी वह मन को न रोक सकी। विपिन को बुला भेजा। विपिन को भी उस पर कुछ दया आ गई। आकर सामने खड़े हो गये। आशा ने उनके मुँह की ओर देखा तो चौंक पड़ी। वह इतने दुर्बल हो गये थे कि पहचानना मुश्किल था। बोली—क्या तुम भी बीमार हो क्या? तुम तो मुझसे भी ज्यादा घुल गये हो?

विपिन—उँह, जिन्दगी में रक्खा ही क्या है जिसके लिए जीने की फिक्र करूँ।

आशा—जीने की फिक्र न करने से भी कोई इतना दुबला नहीं हो जाता। तुम अपनी कोई दवा क्यों नहीं करते?

यह कहकर उसने विपिन का दाहना हाथ पकड़कर अपनी चारपाई पर बैठा लिया। विपिन ने भी हाथ छुड़ाने की चेष्टा न

की। उनके स्वभाव में इस समय एक विचित्र नम्रता थी जो आशा ने कभी न देखी थी। बातों से भी निराशा टपकती थी। अक्खड़पन या क्रोध की गन्ध भी न थी। आशा को ऐसा मालूम हुआ कि उनकी आँखों में आँसू भरे हुए हैं।

विपिन चारपाई पर बैठते हुए बोले—मेरी दवा अब मौत करेगी। मैं तुम्हें जलाने के लिए नहीं कहता। ईश्वर जानता है मैं तुम्हें चोट नहीं पहुँचाना चाहता। मैं अब ज्यादा दिनों तक न जिऊँगा। मुझे किसी भयंकर रोग के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। डाक्टरों ने भी यही कहा है। मुझे इसका खेद है कि मेरे हाथों तुम्हें कष्ट पहुँचा, पर क्षमा करना। कभी कभी बैठे बैठे मेरा दिल डूब जाता है, मूर्च्छा-सी आ जाती है!

यह कहते एकाएक वह काँप उठे। सारी देह में सनसनी-सी दौड़ गई। मूर्च्छित होकर चारपाई पर गिर पड़े और हाथ-पैर पटकने लगे। मुँह से फ़िचकुर निकलने लगा। सारी देह पसीने से तर हो गई।

आशा का सारा रोग हवा हो गया। वह महीनों से बिस्तर न छोड़ सकी थी। पर इस समय उसके शिथिल अङ्गों में विचित्र स्फूर्ति दौड़ गई। उसने तेज़ी से उठकर विपिन को अच्छी तरह लेटा दिया और उनके मुख पर पानी की छींटें देने लगी। महरी भी दौड़ी आई और पंखा झलने लगी। बाहर ख़बर हुई, मित्रों ने दौड़कर डाक्टर को बुलाया। बहुत यत्न करने पर भी विपिन ने आँखें न खोलीं। संध्या होते होते उनका मुँह टेढ़ा हो गया, और बायाँ

अङ्ग शून्य पड़ गया। हिलना तो दूर रहा, मुँह से बात निकलना भी मुश्किल हो गया। यह मूर्च्छा न थी, फ़ालिज था!

(५)

फ़ालिज के भयङ्कर रोग में रोगी की सेवा करना आसान काम नहीं है। उस पर आशा महीनों से बीमार थी। लेकिन इस रोग के सामने वह अपना रोग भूल गई। १५ दिनों तक विपिन की हालत बहुत नाज़ुक रही। आशा दिन के दिन और रात की रात उनके पास बैठी रहती, उनके लिए पथ्य बनाना, उन्हें गोद में सँभालकर दवा पिलाना, उनके ज़रा ज़रा से इशारे को समझना उसी-जैसी धैर्यशीला स्त्री का काम था। अपना सिर दर्द से फटा करता, ज्वर से देह तपा करती, पर इसकी उसे जरा भी परवा न थी।

१५ दिनों के बाद विपिन की हालत कुछ सँभली। उनका दाहना पैर तो लुञ्ज पड़ गया था, पर तोतली भाषा में कुछ बोलने लगे थे। सबसे बुरी गति उनके सुन्दर मुख की हुई थी। वह इतना टेढ़ा हो गया था जैसे कोई रबर के खिलौने को खींचकर बढ़ा दे। बैटरी की मदद से ज़रा देर के लिए बैठ या खड़े तो हो जाते थे, लेकिन चलने-फिरने की ताकत न थी।

एक दिन लेटे लेटे उन्हें क्या जाने क्या ख़याल आया। आईना उठाकर अपना मुँह देखने लगे। ऐसा कुरूप आदमी उन्होंने कभी न देखा था। आहिस्ता से बोले—आशा, ईश्वर ने मुझे ग़रूर की सजा दे दी। वास्तव में यह उसी बुराई का बदला है जो मैंने तुम्हारे साथ की। अब तुम अगर मेरा मुँह देखकर घृणा से मुँह फेर लो

तो मुझे तुमसे जरा भी शिकायत न होगी। मैं चाहता हूँ कि तुम मुझसे उस दुर्व्यवहार का बदला लो जो मैंने तुम्हारे साथ किये हैं!

आशा ने पति की ओर कोमल भाव से देखकर कहा—मैं तो आपको अब भी उसी निगाह से देखती हूँ। मुझे तो आपमें कोई अन्तर नहीं दिखाई देता।

विपिन—वाह, बन्दर का-सा मुँह हो गया है, तुम कहती हो कोई अन्तर ही नहीं। मैं तो अब कभी बाहर न निकलूँगा। ईश्वर ने मुझे सचमुच दण्ड दिया है!

(६)

बहुत यत्न किये गये पर विपिन का मुँह न सीधा हुआ। मुख का बायाँ भाग इतना टेढ़ा हो गया था कि चेहरा देखकर डर मालूम होता था। हाँ, पैरों में इतनी शक्ति आ गई कि अब वह चलने-फिरने लगे।

आशा ने पति की बीमारी में देवी की मनौती की थी। आज उसी पूजा का उत्सव था। मुहल्ले की स्त्रियाँ बनाव-सिंगार किये जमा थीं। गाना-बजाना हो रहा था।

एक सहेली ने पूछा—क्यों आशा, अब तो तुम्हें उनका मुँह जरा भी अच्छा न लगता होगा।

आशा ने गम्भीर होकर कहा—मुझे तो पहले से कहीं अच्छा मालूम होता है!

"चलो, बातें बनाती हो।"

"नहीं बहन, सच कहती हूँ। रूप के बदले मुझे उनकी आत्मा मिल गई जो रूप से कहीं बढ़कर है।"

विपिन अपने कमरे में बैठे हुए थे। कई मित्र जमा थे। ताश हो रहा था।

कमरे में एक खिड़की थी जो आँगन में खुलती थी। इस वक्त वह बन्द थी। एक मित्र ने चुपके से उसे खोल दिया और शीशे से झाँककर विपिन से कहा—आज तो तुम्हारे यहाँ परियों का अच्छा जमघट है।

विपिन—बंद कर दो।

"अजी, जरा देखो तो कैसी कैसी सूरतें हैं! तुम्हें इन सभों में कौन सबसे अच्छी मालूम होती है?"

विपिन ने उड़ती हुई नजरों से देखकर कहा—मुझे तो वही स्त्री सबसे अच्छी मालूम होती है जो थाल में फूल रख रही है।

"वाह री, आपकी निगाह! क्या सूरत के साथ तुम्हारी निगाह भी बिगड़ गई! मुझे तो वह सबसे बदसूरत मालूम होती है।"

"इस लिए कि तुम उसकी सूरत देखते हो और मैं उसकी आत्मा देखता हूँ।"

"अच्छा, यही मिसेज विपिन हैं?"

"जी हाँ, यह वही देवी है!"

उद्धार

(१)

हिन्दू-समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दूषित, इतनी चिन्ताजनक, इतनी भयङ्कर हो गई है कि कुछ समझ में नहीं आता उसका सुधार क्योंकर हो। बिरले ही ऐसे माता-पिता होंगे जिनके सात पुत्रों के बाद भी एक कन्या उत्पन्न हो जाय तो वह सहर्ष उसका स्वागत करें। कन्या का जन्म होते ही उसके विवाह की चिन्ता सिर पर सवार हो जाती है और आदमी उसी में डुबकियाँ खाने लगता है। अवस्था इतनी निराशामय और भयानक हो गई है कि ऐसे माता-पिताओं की कमी नहीं है जो कन्या की मृत्यु पर हृदय से प्रसन्न होते हैं, मानो सिर से बाधा टली। इसका कारण केवल यही है कि दहेज की दर, दिन दूनी रात चौगुनी, पावस काल के जल-वेग के समान बढ़ती चली जा रही है। जहाँ दहेज की सैकड़ों में बातें होती थीं वहाँ अब हजारों तक नौबत पहुँच गई है। अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि एक या दो हजार रुपये दहेज केवल बड़े घरों की बात थी, छोटी-मोटी शादियाँ पाँच सौ से एक हजार तक तय हो जाती थीं। पर अब मामूली मामूली विवाह भी तीन-चार हजार के नीचे नहीं तय होते।

खरच का तो यह हाल है और शिक्षित समाज की निर्धनता और दरिद्रता दिनोंदिन बढ़ती जाती है। इसका अन्त क्या होगा ईश्वर ही जाने। बेटे एक दरजन भी हों तो माता-पिता को चिन्ता नहीं होती। वह अपने ऊपर उनके विवाह-भार को अनिवार्य नहीं समझता, यह उसके लिए Compulsory विषय नहीं, Optional विषय है। होगा तो कर देंगे; नहीं कह देंगे—बेटा, खाओ कमाओ, समाई हो तो विवाह कर लेना। बेटों की कुचरित्रता कलंक की बात नहीं समझी जाती ; लेकिन कन्या का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उससे भागकर कहाँ जायेंगे ? अगर विवाह में विलम्ब हुआ और कन्या के पाँव कहीं ऊँचे-नीचे पड़ गये तो फिर कुटुम्ब की नाक कट गई, वह पतित हो गया, टाट-बाहर कर दिया गया। अगर वह इस दुर्घटना को सफलता के साथ गुप्त रख सका तब तो कोई बात नहीं, उसको कलंकित करने का किसी को साहस नहीं, लेकिन अभाग्य-वश यदि वह इसे छिपा न सका, भाँडा-फोड़ हो गया तो फिर माता-पिता के लिए, भाई-बन्धुओं के लिए संसार में मुँह दिखाने को स्थान नहीं रहता। कोई अपमान इससे दुस्सह, कोई विपत्ति इससे भीषण नहीं। किसी भी व्याधि की इससे भयङ्कर कल्पना नहीं की जा सकती। लुत्फ़ तो यह है कि जो लोग बेटियों के विवाह की कठिनाइयों को भोग चुके होते हैं वही अपने बेटों के विवाह के अवसर पर बिलकुल भूल जाते हैं कि हमें कितनी ठोकरें खानी पड़ी थीं, ज़रा भी सहानुभूति नहीं प्रकट करते, बल्कि कन्या के विवाह में जो तावान उठाया था उसे चक्रवृद्धि व्याज के साथ बेटे के

विवाह में वसूल करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं। कितने ही मा पिता इसी चिन्ता में घुल घुलकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, कोई संन्यास ग्रहण कर लेता है, कोई बूढ़े के गले कन्या को मढ़कर अपना गला छुड़ाता है, पात्र-कुपात्र के विचार करने का मौक़ा कहाँ, ठेलमठेल है।

मुंशी गुलज़ारीलाल ऐसे ही हतभागे पिताओं में थे। यों उनकी स्थिति बुरी न थी; दो-ढाई सौ रुपये महीने वकालत से पीट लेते थे, पर ख़ानदानी आदमी थे, उदार हृदय, बहुत किफ़ायत करने पर भी माक़ूल बचत न हो सकती थी। सम्बन्धियों का आदर-सत्कार न करें तो नहीं बनता, मित्रों की ख़ातिरदारी न करें तो नहीं बनता, फिर ईश्वर के दिये हुए दो-तीन पुत्र थे, उनका पालन-पोषण, शिक्षण का भार था, क्या करते। पहली कन्या का विवाह उन्होंने अपनी हैसियत के अनुसार अच्छी तरह किया, पर दूसरी पुत्री का विवाह टेढ़ी खीर हो रहा था। यह आवश्यक था कि विवाह अच्छे घराने में हो, अन्यथा लोग हँसेंगे; और अच्छे घराने के लिए कम से कम पाँच हज़ार का तख़मीना था। उधर पुत्री सयानी होती जाती थी। वही अनाज जो लड़के खाते थे, वह भी खाती थी, लेकिन लड़कों को देखो तो जैसे सूखे का रोग लगा हो और लड़की शुक्ल पक्ष का चाँद हो रही थी। बहुत दौड़-धूप करने पर बेचारे को एक लड़का मिला। बाप आबकारी के विभाग में ४००) का नौकर था, लड़का भी सुशिक्षित, स्त्री से आकर बोले, लड़का तो मिला और घर-बार एक भी काटने योग्य नहीं, पर कठि-

नाई यही है कि लड़का कहता है मैं अपना विवाह ही न करूँगा। बाप ने कितना समझाया, मैंने कितना समझाया, औरों ने समझाया पर वह टस से मस नहीं होता। कहता है, मैं कभी विवाह न करूँगा। समझ में नहीं आता, विवाह से क्यों इतनी घृणा करता है। कोई कारण नहीं बतलाता, बस यही कहता है मेरी इच्छा! माँ-बाप का एकलौता लड़का है, उनकी परम इच्छा है कि इसका विवाह हो जाय, पर करें क्या। यों उन्होंने फलदान तो रख लिया है, पर मुझसे कह दिया है कि लड़का स्वभाव का हठीला है, अगर न मानेगा तो फलदान आपको लौटा दिया जायगा।

स्त्री ने कहा—तुमने लड़के को एकान्त में बुलाकर पूछा नहीं?

गुलजारीलाल—बुलाया था। बैठा रोता रहा, फिर उठकर चला गया। तुमसे क्या कहूँ, उसके पैरों पर गिर पड़ा लेकिन बिना कुछ कहे उठकर चला गया।

स्त्री—देखो, इस लड़की के पीछे क्या क्या झेलना पड़ता है।

गुलजारीलाल—कुछ नहीं, आजकल के लौंडे सैलानी होते हैं। अँगरेज़ी पुस्तकों में पढ़ते हैं कि विलायत में कितने ही लोग अविवाहित रहना ही पसन्द करते हैं। बस यही सनक सवार हो जाती है कि निर्द्वन्द्व रहने में ही जीवन का सुख और शान्ति है। जितनी मुसीबतें हैं वह सब विवाह ही में हैं। मैं भी कालेज में था तब सोचा करता था कि अकेला रहूँगा और मज़े से सैर-सपाटा करूँगा।

स्त्री—है तो वास्तव में बात यही। विवाह ही तो सारी मुसी-

बंतों की जड़ है। तुमने विवाह न किया होता तो क्यों ये चिन्ताएँ होतीं। मैं भी क्वाँरी रहती तो चैन करती।

(२)

इसके एक महीना बाद मुंशी गुलज़ारीलाल के पास वर ने यह पत्र लिखा—

"पूज्य वर,

सादर प्रणाम—

मैं आज बहुत असमंजस में पड़कर यह पत्र लिखने का साहस कर रहा हूँ। इस धृष्ठता को क्षमा कीजिएगा।

आपके जाने के बाद से मेरे पिताजी और माताजी दोनों मुझ पर विवाह करने के लिए नाना प्रकार से दबाव डाल रहे हैं। माताजी रोती हैं, पिताजी नाराज़ होते हैं। वह समझते हैं कि मैं केवल अपनी ज़िद के कारण विवाह से भागता हूँ। कदाचित् उन्हें यह भी संदेह हो रहा है कि मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया है। मैं वास्तविक कारण बताते हुए डरता हूँ कि इन लोगों को दुख होगा और आश्चर्य नहीं कि शोक में उनके प्राणों पर ही बन जाय। इस लिए अब तक मैंने जो बात गुप्त रक्खी थी वह आज विवश होकर आपसे प्रकट करता हूँ और आपसे साग्रह निवेदन करता हूँ कि आप इसे गोपनीय समझिएगा और किसी दशा में भी उन लोगों के कानों में इसकी भनक न पड़ने दीजिएगा। जो होना है वह तो होगा ही, पहले ही से क्यों उन्हें शोक में डुबाऊँ। मुझे ५-६ महीनों से यह अनुभव हो रहा है कि मैं क्षय-रोग से

ग्रसित हूँ। उसके सभी लक्षण प्रकट होते जाते हैं। डाक्टरों की भी यही राय है। यहाँ सबसे अनुभवी जो दो डाक्टर हैं उन दोनों ही से मैंने अपनी आरोग्य-परीक्षा कराई और दोनों ही ने स्पष्ट कहा कि तुम्हें सिल है। अगर माता-पिता से यह बात कह दूँ तो वह रो रोकर मर जायेंगे। जब यह निश्चय है कि मैं संसार में थोड़े ही दिनों का मेहमान हूँ तो मेरे लिए विवाह की कल्पना करना भी पाप है। संभव है कि मैं विशेष प्रयत्न करने से साल दो साल जीवित रहूँ, पर वह दशा और भी भयंकर होगी, क्योंकि अगर कोई संतान हुई तो वह भी मेरे संस्कार से अकाल मृत्यु पायेगी और कदाचित् स्त्री को भी इसी रोग-राक्षस का भक्षण बनना पड़े। मेरे अविवाहित रहने से जो कुछ बीतेगी मुझ ही पर बीतेगी। विवाहित हो जाने से मेरे साथ और भी कई जीवों का नाश हो जायगा। इस लिए आपसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि मुझे इस बन्धन में डालने के लिए आग्रह न कीजिए अन्यथा आपको पछ-ताना पड़ेगा।

सेवक,

हजारीलाल"

पत्र पढ़कर गुलजारीलाल ने स्त्री की ओर देखा और बोले—इस पत्र के विषय में तुम्हारा क्या विचार है?

स्त्री—मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि उसने बहाना रचा है।

गुलजारीलाल—बस बस, ठीक यही मेरा भी विचार है। उसने समझा है कि बीमारी का बहाना कर दूँगा तो लोग आप

ही हट जायेंगे। असल में बीमारी कुछ नहीं। मैंने तो देखा ही था, चेहरा चमक रहा था। बीमार का मुँह छिपा नहीं रहता।

स्त्री—राम का नाम लेके विवाह करो, कोई किसी का भाग्य थोड़े ही पढ़े बैठा है।

गुलजारीलाल—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।

स्त्री—न हो किसी डाक्टर से लड़के को दिखाओ। कहीं सच-मुच यह बीमारी हो तो बेचारी अम्बा कहीं की न रहे।

गुलजारीलाल—तुम भी पागल हुई हो क्या, यह सब हीले-हवाले हैं। इन छोकरों के दिल का हाल मैं खूब जानता हूँ। सोचता होगा, अभी सैर-सपाटे कर रहा हूँ, विवाह हो जायगा तो यह गुलछर्रे कैसे उड़ेंगे।

स्त्री—तो शुभ मुहूर्त देखकर लग्न भेजवाने की तैयारी करो।

(३)

हजारीलाल बड़े धर्म-संदेह में था! उसके पैरों में ज़बरदस्ती विवाह की बेड़ी डाली जा रही थी और वह कुछ न कर सकता था। उसने ससुर को अपना कच्चा चिट्ठा कह सुनाया, मगर किसी ने उसकी बातों पर विश्वास न किया। माँ-बाप से अपनी बीमारी का हाल कहने का उसे साहस न होता था, न-जाने उनके दिल पर क्या गुज़रे, न-जाने क्या कर बैठें। कभी सोचता, किसी डाक्टर की शहा-दत लेकर ससुर के पास भेज दूँ, मगर फिर ध्यान आता, यदि उन लोगों को उस पर भी विश्वास न आया तो? आजकल डाक्टरों से सनद ले लेना कौनसा मुश्किल काम है। सोचेंगे किसी डाक्टर

को कुछ दे-दिलाकर लिखा लिया होगा। शादी के लिए तो इतना आग्रह हो रहा था, उधर डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया था कि अगर तुमने शादी की तो तुम्हारा जीवन-सूत्र और भी निर्बल हो जायगा। महीनों की जगह दिनों में वारा-न्यारा हो जाने की संभावना है।

लग्न आ चुका था। विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं, मेहमान आते-जाते थे और हज़ारीलाल घर से भागा भागा फिरता था। कहाँ चला जाऊँ? विवाह की कल्पना ही से उसके प्राण सूखे जाते थे। आह! उस अबला की क्या गति होगी? जब उसे यह बात मालूम होगी तो वह मुझे अपने मन में क्या कहेगी? कौन इस पाप का प्रायश्चित्त करेगा? नहीं, यह उस अबला पर घोर अत्याचार है। मैं उस पर यह अत्याचार न करूँगा, उसे वैधव्य की आग में न जलाऊँगा। मेरी ज़िन्दगी ही क्या, आज न मरा कल मरूँगा, कल नहीं तो परसों, तो क्यों न आज ही मर जाऊँ? आज ही जीवन का और उसके साथ सारी चिन्ताओं का, सारी विपत्तियों का, अन्त कर दूँ। पिताजी रोयेंगे, अम्माँ प्राण त्याग देंगी, लेकिन एक बालिका का जीवन तो सफल हो जायेगा, मेरे बाद कोई अभागा अनाथ तो न रोयेगा।

क्यों न चलकर पिताजी से कह दूँ? वह एक-दो दिन दुखी रहेंगे, अम्माँजी दो-एक रोज़ शोक से निराहार रह जायेंगी, कोई चिन्ता नहीं, अगर माता-पिता के इतने कष्ट से एक युवती की प्राण-रक्षा हो जाय तो क्या छोटी बात है!

यह सोचकर वह धीरे से उठा और आकर पिता के सामने खड़ा हो गया।

रात के १० बज गये थे। बाबू दरबारीलाल चारपाई पर लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। आज उन्हें सारा दिन दौड़ते गुज़रा था। शामियाना तय किया, बाजेवालों को बयाना दिया, आतशबाज़ी, फुलवारी आदि का प्रबन्ध किया, घंटों ब्राह्मणों के साथ सिर मारते रहे, इस वक्त ज़रा कमर सीधी कर रहे थे कि सहसा हज़ारीलाल को सामने देखकर चौंक पड़े। उसका उतरा हुआ चेहरा, सजल आँखें और कुंठित मुख देखा तो कुछ चिंतित होकर बोले—क्यों लाल्लू, तबीयत तो अच्छी है न? कुछ उदास मालूम होते हो?

हज़ारीलाल—मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ, पर भय होता है कि कहीं आप अप्रसन्न न हों।

दरबारीलाल—समझ गया, वही पुरानी बात है न? उसके सिवा कोई दूसरी बात हो तो शौक़ से कहो।

हज़ारीलाल—खेद है कि मैं उसी विषय में कुछ कहना चाहता हूँ।

दरबारीलाल—यही कहना चाहते हो न कि मुझे इस बन्धन में न डालिए, मैं इसके अयोग्य हूँ, मैं यह भार सह नहीं सकता, यह बेड़ी मेरी गरदन को तोड़ देगी, आदि; या और कोई नई बात!

हज़ारीलाल—जी नहीं, नई बात है। मैं आपकी आ[illegible]न करने के लिए सब प्रकार से तैयार हूँ, पर एक ऐसी बात [illegible]

मैंने अब तक छिपाया था, उसे भी प्रकट कर देना चाहता हूँ। इसके बाद आप जो कुछ निश्चय करेंगे उसे मैं शिरोधार्य करूँगा।

दरबारीलाल—कहो, क्या कहते हो ?

हजारीलाल ने बड़े विनीति शब्दों में अपना आशय कहा, डाक्टरों की राय भी बयान की और अंत में बोले—ऐसी दशा में मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे विवाह करने के लिए बाध्य न करेंगे।

दरबारीलाल ने पुत्र के मुख की ओर ग़ौर से देखा, कहीं ज़रदी का नाम न था, इस कथन पर विश्वास न आया, पर अपना अविश्वास छिपाने और अपना हार्दिक शोक प्रकट करने के लिए वह कई मिनट तक गहरी चिन्ता में मग्न रहे। इसके बाद पीड़ित कंठ से बोले—बेटा, इस दशा में तो विवाह करना और भी आवश्यक है। ईश्वर न करे कि हम वह बुरा दिन देखने के लिए जीते रहें, पर विवाह हो जाने से तुम्हारी कोई निशानी तो रह जायगी। ईश्वर ने कोई सन्तान दे दी तो वही हमारे बुढ़ापे की लाठी होगी, उसी का मुँह देख देखकर दिल को समझायेंगे, जीवन का कुछ आधार तो रहेगा। फिर आगे क्या होगा, यह कौन कह सकता है। डाक्टर किसी की कर्म-रेखा तो नहीं पढ़े होते, ईश्वर की लीला अपरम्पार है, डाक्टर उसे नहीं समझ सकते। तुम निश्चिन्त होकर बैठो, हम जो कुछ करते हैं करने दो, भगवान् चाहेंगे तो सब कल्याण ही होगा।

हजारीलाल ने इसका कोई उत्तर न दिया। आँखें डबडबा

आई, कंठावरोध के कारण मुँह तक न खोल सका। चुपके से आकर अपने कमरे में लेट रहा।

तीन दिन और गुज़र गये पर हज़ारीलाल कुछ निश्चय न कर सका। विवाह की तैयारियाँ पूरी हो गई थीं। आँगन में मंडप गड़ गया था, डाल, गहने संदूकों में रक्खे जा चुके थे। मैत्रेयी की पूजा हो चुकी थी और द्वार पर बाजों का शोर मचा हुआ था। महल्ले के लड़के जमा होकर बाजा सुनते थे और उल्लास से इधर-उधर दौड़ते थे।

संध्या हो गई थी। बरात आज रात की गाड़ी से जानेवाली थी। बरातियों ने अपने वस्त्राभूषण पहनने शुरू किये, कोई नाई से बाल बनवाता था और चाहता था कि ख़त ऐसा साफ़ हो जाय मानो वहाँ बाल कभी थे ही नहीं, बूढ़े अपने पके बाल उखड़वाकर जवान बनने की चेष्टा कर रहे थे। तेल, साबुन; उबटन की लूट मची हुई थी और हज़ारीलाल बग़ीचे में एक वृक्ष के नीचे उदास बैठा हुआ सोच रहा था, क्या करूँ?

अन्तिम निश्चय की घड़ी सिर पर खड़ी थी। अब एक क्षण भी विलम्ब करने का मौक़ा न था। अपनी वेदना किससे कहे, कोई सुननेवाला न था!

उसने सोचा, हमारे माता-पिता कितने अदूरदर्शी हैं, अपनी उमंग में इन्हें इतना भी नहीं सूझता कि वधू पर क्या गुज़रेगी। वधू के माता-पिता भी इतने अन्धे हो रहे हैं कि देखकर देखते, जानकर भी नहीं जानते।

क्या यह विवाह है ? कदापि नहीं। यह तो लड़की को कुएँ में डालना है, भाड़ में झोंकना है, कुन्द छूरे से रेतना है। कोई यातना इतनी दुस्सह, इतनी हृदयविदारक नहीं हो सकती जितनी वैधव्य ! और यह लोग जान-बूझकर अपनी पुत्री को वैधव्य की अग्नि-कुण्ड में डाले देते हैं। यह माता-पिता हैं ? कदापि नहीं, यह लड़की के शत्रु हैं, क़साई हैं, वधिक हैं, हत्यारे हैं। क्या इनके लिए कोई दण्ड नहीं ? जो जान-बूझकर अपनी प्रिय सन्तान के खून से अपने हाथ रँगते हैं, उनके लिए कोई दण्ड नहीं ? समाज भी उन्हें दण्ड नहीं देता। कोई कुछ नहीं कहता। हाय !

यह सोचकर हज़ारीलाल उठा और एक ओर चुपचाप चला। उसके मुख पर तेज छाया हुआ था। उसने आत्म-बलिदान से इस कष्ट को निवारण करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। उसे मृत्यु का लेशमात्र भी भय न था। वह उस दशा को पहुँच गया था जब सारी आशाएँ मृत्यु ही पर अवलम्बित हो जाती हैं।

उस दिन से फिर किसी ने हज़ारीलाल की सूरत नहीं देखी। मालूम नहीं, ज़मीन खा गई या आसमान। नदियों में जाल डाले गये, कुओं में बाँस पड़ गये, पुलीस में हुलिया लिखाया गया। समाचारपत्रों में विज्ञप्ति निकाली गई पर कहीं पता न चला।

कई हफ्तों के बाद, छावनी रेलवे स्टेशन से एक मील पच्छिम की ओर सड़क पर कुछ हड्डियाँ मिलीं। लोगों को अनुमान हुआ कि हज़ारीलाल ने गाड़ी के नीचे दबकर जान दी। पर निश्चित रूप से कुछ न मालूम हुआ !

(४)

भादों का महीना था और तीज का दिन। घरों में सफ़ाई हो रही थी। सौभाग्यवती रमणियाँ सोलहों शृंगार किये गंगा-स्नान करने जा रही थीं। अम्बा स्नान करके लौट आई थी और तुलसी के कच्चे चबूतरे के सामने खड़ी वन्दना कर रही थी। पतिगृह में उसे यह पहली ही तीज थी, बड़े उमंगों से व्रत रक्खा था। सहसा उसके पति ने अन्दर आकर उसे सहास नेत्रों से देखा और बोला—मुंशी दरबारीलाल तुम्हारे कौन होते हैं, यह उनके यहाँ से तुम्हारे लिए तीज की पठौनी आई है। अभी डाकिया दे गया है।

यह कहकर उसने एक पारसल चारपाई पर रख दिया। दरबारीलाल का नाम सुनते ही अम्बा की आँखें सजल हो गईं। वह लपकी हुई आई और पारसल को हाथ में लेकर देखने लगी, पर उसकी हिम्मत न पड़ी कि उसे खोले। पिछली स्मृतियाँ जीवित हो गईं, हृदय में हज़ारीलाल के प्रति श्रद्धा का एक उद्गार-सा उठ पड़ा। आह! यह उसी देवात्मा के आत्म-बलिदान का पुनीत फल है कि मुझे यह दिन देखना नसीब हुआ। ईश्वर उन्हें सद्गति दें। वह आदमी नहीं, देवता थे जिसने मेरे कल्याण के निमित्त अपने प्राण तक समर्पण कर दिये!

पति ने पूछा—दरबारीलाल तुम्हारे चचा हैं?

अम्बा—हाँ।

पति—इस पत्र में हज़ारीलाल का नाम लिखा है, यह कौन है?

अम्बा—यह मुंशी दरबारीलाल के बेटे हैं?

पति—तुम्हारे चचेरे भाई ?

अम्बा—नहीं, मेरे परम दयालु उद्धारक, जीवनदाता, मुझे अथाह जल में डूबने से बचानेवाले, मुझे सौभाग्य का वरदान देनेवाले ।

पति ने इस भाव से कहा मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो—अहा ! मैं समझ गया । वास्तव में वह मनुष्य नहीं, देवता थे !

निर्वासन

परशुराम—वहीं, वहीं, वहीं दालान में ठहरो !

मर्यादा—क्यों, क्या मुझमें कुछ छूत लग गया ?

परशुराम—पहले यह बताओ कि तुम इतने दिनों कहाँ रहीं, किसके साथ रहीं, किस तरह रहीं और फिर यहाँ किसके साथ आईं। तब, तब विचार.....देखी जायगी।

मर्यादा—क्या इन बातों के पूछने का यही वक्त है, फिर अवसर न मिलेगा ?

परशुराम—हाँ, यही बात है। तुम स्नान करके नदी से तो मेरे साथ ही निकली थीं। मेरे पीछे पीछे कुछ दूर तक आईं भी, मैं पीछे फिर फिरकर तुम्हें देखता जाता था। फिर एकाएक तुम कहाँ ग़ायब हो गईं ?

मर्यादा—तुमने देखा नहीं, नागे साधुओं का एक दल सामने से आ गया ! सब आदमी इधर-उधर दौड़ने लगे। मैं भी धक्के में पड़कर जाने किधर चली गई। जब ज़रा भीड़ कम हुई तो तुम्हें ढूँढ़ने लगी। बासू का नाम ले लेकर पुकारने लगी, पर तुम न दिखाई दिये।

परशुराम—अच्छा तब ?

मर्यादा—तब मैं एक किनारे बैठकर रोने लगी, कुछ सूझ ही

न पड़ता था कि कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ, आदमियों से डर लगता था। संध्या तक वहीं बैठी रोती रही।

परशुराम—इतना तूल क्यों देती हो? वहाँ से फिर कहाँ गईं?

मर्यादा—संध्या को एक युवक ने आकर मुझसे पूछा, तुम्हारे घर के लोग खो तो नहीं गये हैं? मैंने कहा हाँ। तब उसने तुम्हारा नाम, पता, ठिकाना पूछा। उसने सब एक किताब पर लिख लिया और मुझसे बोला, मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें तुम्हारे घर भेज दूँगा।

परशुराम – वह कौन आदमी था?

मर्यादा—वहाँ की सेवा-समिति का स्वयंसेवक था।

परशुराम—तो तुम उसके साथ हो लीं?

मर्यादा—और क्या करती? वह मुझे समिति के कार्यालय में ले गया। वहाँ एक शामियाना में एक लम्बी डाढ़ीवाला मनुष्य बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। वही उन सेवकों का अध्यक्ष था। और भी कितने ही सेवक वहाँ खड़े थे। उसने मेरा पता-ठिकाना रजिस्टर में लिखकर मुझे एक अलग शामियाने में भेज दिया, जहाँ और भी कितनी खोई हुई स्त्रियाँ बैठी हुई थीं।

परशुराम—तुमने उसी वक्त अध्यक्ष से क्यों न कहा कि मुझे पहुँचा दीजिए।

मर्यादा—मैंने एक बार नहीं सैकड़ों बार कहा, लेकिन वह यही कहते रहे जब तक मेला खतम न हो जाय और सब खोई

हुई स्त्रियाँ एकत्र न हो जायें मैं भेजने का प्रबंध नहीं कर सकता। मेरे पास न इतने आदमी हैं न इतना धन।

परशुराम—धन की तुम्हें क्या कमी थी, कोई एक सोने की चीज़ बेच देतीं तो काफ़ी रुपये मिल जाते!

मर्यादा—आदमी तो नहीं थे।

परशुराम—तुमने यह कहा था कि ख़रच की कुछ चिन्ता न कीजिए, मैं अपना गहना बेचकर अदा कर दूँगी।

मर्यादा—नहीं, यह तो मैंने नहीं कहा।

परशुराम—तुम्हें उस दशा में भी गहने इतने प्रिय थे?

मर्यादा—और सब स्त्रियाँ कहने लगीं, घबराई क्यों जाती हो? यहाँ किसी बात का डर नहीं है। हम सभी जल्द से जल्द अपने घर पहुँचना चाहती हैं, मगर क्या करें। तब मैं भी चुपकी हो रही।

परशुराम—और सब स्त्रियाँ कुएँ में गिर पड़तीं तो तुम भी गिर पड़तीं?

मर्यादा—जानती तो थी कि यह लोग धर्म के नाते मेरी रक्षा कर रहे हैं, कुछ मेरे नौकर या मजूर नहीं हैं, फिर आग्रह किस मुँह से करती? यह बात भी है कि बहुत-सी स्त्रियों को वहाँ देखकर मुझे कुछ तसल्ली हो गई।

परशुराम—हाँ, इससे बढ़कर तस्कीन की और क्या बात हो सकती थी। अच्छा, वहाँ कै दिन तस्कीन का आनन्द उठाती रहीं? मेला तो दूसरे ही दिन उठ गया होगा?

मर्यादा—रातभर मैं स्त्रियों के साथ उसी शामियाने में रही।

परशुराम—अच्छा, तुमने मुझे तार क्यों न दिलवा दिया?

मर्यादा—मैंने समझा, जब यह लोग पहुँचाने कहते ही हैं तो तार क्यों दूँ?

परशुराम—खैर, रात को तुम वहीं रहीं, युवक बार बार भीतर आते-जाते रहे होंगे?

मर्यादा—केवल एक बार एक सेवक भोजन के लिए पूछने आया था, जब हम सबों ने खाने से इनकार कर दिया तो वह चला गया और फिर कोई न आया। मैं तो रातभर जागती ही रही।

परशुराम—यह मैं कभी न मानूँगा कि इतने युवक वहाँ थे और कोई अंदर न गया होगा। समिति के युवक आकाश के देवता नहीं होते। खैर, वह डाढ़ीवाला अध्यक्ष तो ज़रूर ही देख-भाल करने गया होगा?

मर्यादा—हाँ, वह आते थे; पर द्वार पर से पूछ-पाछकर लौट जाते थे। हाँ जब एक महिला के पेट में दर्द होने लगा था तो दो-तीन बार दवाएँ पिलाने आये थे।

परशुराम—निकली न वही बात। मैं इन धूर्तों की नस नस पहचानता हूँ। विशेषकर तिलक-मालाधारी डढ़ियलों को तो मैं गुरु-घण्टाल ही समझता हूँ। तो वह महाशय कई बार दवाएँ देने गये? क्यों तुम्हारे पेट में तो दर्द नहीं होने लगा था?

मर्यादा—तुम एक साधु पुरुष पर व्यर्थ आक्षेप कर रहे हो। वह बेचारे एक तो मेरे बाप के बराबर थे, दूसरे आँखें नीची किये रहने के सिवाय कभी किसी पर सीधी निगाह नहीं करते थे!

मर्यादा—आदर आ क होनहार नहीं है, तुम्हारी चाल है। वासुदेव को प्यार करने के बहाने तुम इस घर पर अधिकार जमाना चाहती हो।

परशुराम—बको मत ! वह दलाल तुम्हें कहाँ ले गया ?

मर्यादा—स्वामी, यह न पूछिए, मुझे कहते लज्जा आती है।

परशुराम—यहाँ आते तो और भी लज्जा आनी चाहिए थी !

मर्यादा—मैं परमात्मा को साक्षी देती हूँ कि मैंने उसे अपना अंग भी स्पर्श नहीं करने दिया।

परशुराम—उसका हुलिया बयान कर सकती हो ?

मर्यादा—साँवला-सा छोटे डील का आदमी था। नीचा कुरता पहने हुए था।

परशुराम—गले में ताबीजें भी थीं ?

मर्यादा—हाँ, थीं तो !

परशुराम—वह धर्मशाले का मेहतर था। मैंने उससे तुम्हारे गुम हो जाने की चरचा की थी। उस दुष्ट ने उसका यह स्वाँग रचा।

मर्यादा—मुझे तो वह कोई ब्राह्मण मालूम होता था।

परशुराम—नहीं मेहतर था। वह तुम्हें अपने घर ले गया ?

मर्यादा—हाँ, उसने मुझे ताँगे पर बैठाया और एक तंग गली में, एक छोटे-से मकान के अन्दर ले जाकर बोला—तुम यहीं बैठो, तुम्हारे बाबूजी यहीं आयेंगे। अब मुझे विदित हुआ कि मुझे धोखा दिया गया। रोने लगी। वह आदमी थोड़ी देर के बाद चला गया और एक बुढ़िया आकर मुझे भाँति भाँति के प्रलोभन देने लगी। सारी रात रोकर काटी। दूसरे दिन दोनों फिर मुझे

मर्यादा—मैं अपने पुत्र का मुँह न देखूँ अगर किसी ने मुझे स्पर्श भी किया हो।

परशुराम—तुम्हारा किसी अन्य पुरुष के साथ क्षणभर भी एकान्त में रहना तुम्हारे पातिव्रत को नष्ट करने के लिए बहुत है। यह विचित्र बंधन है, रहे तो जन्म-जन्मान्तर तक रहे, टूटे तो क्षण-भर में टूट जाय। तुम्हीं बताओ, किसी मुसलमान ने ज़बरदस्ती मुझे अपना उच्छिष्ट भोजन खिला दिया होता तो तुम मुझे स्वीकार करतीं?

मर्यादा—वह........वह.....तो दूसरी बात है।

परशुराम—नहीं एक ही बात है। जहाँ भावों का सम्बन्ध है वहाँ तर्क और न्याय से काम नहीं चलता। यहाँ तक कि अगर कोई कह दे कि तुम्हारे पानी को मेहतर ने छू लिया है तब भी उसे ग्रहण करने से तुम्हें घृणा आयेगी। अपने ही दिल से सोचो कि मैं तुम्हारे साथ न्याय कर रहा हूँ या अन्याय?

मर्यादा—मैं तुम्हारी छुई हुई चीजें न खाती, तुम से पृथक् रहती, पर तुम्हें घर से तो न निकाल सकती थी। मुझे इसी लिए न दुत्कार रहे हो कि तुम घर के स्वामी हो और समझते हो कि मैं इसका पालन करता हूँ।

परशुराम—यह बात नहीं है। मैं इतना नीच नहीं हूँ।

मर्यादा—तो तुम्हारा यह अंतिम निश्चय है?

परशुराम—हाँ, अन्तिम!

मर्यादा—जानते हो इसका परिणाम क्या होगा?

परशुराम—जानता भी हूँ और नहीं भी जानता।

मर्यादा—मुझे वासुदेव को ले जाने दोगे ?

परशुराम—वासुदेव मेरा पुत्र है।

मर्यादा—उसे एक बार प्यार कर लेने दोगे ?

परशुराम—अपनी इच्छा से नहीं, हाँ तुम्हारी इच्छा हो तो दूर से देख सकती हो।

मर्यादा—तो जाने दो, न देखूँगी। समझ लूँगी कि मैं विधवा भी हूँ और बाँझ भी। चलो मन ! अब इस घर में तुम्हारा निवाह नहीं है। चलो, जहाँ भाग्य ले जाय !!

नैराश्य-लीला

(१)

पण्डित हृदयनाथ अयोध्या के एक सम्मानित पुरुष थे। धनवान तो नहीं लेकिन खाने-पीने से खुश थे! कई मकान थे, उन्हीं के केराये पर गुज़र होता था। इधर केराये बढ़ गये थे जिससे उन्होंने अपनी सवारी भी रख ली थी। बहुत विचारशील आदमी थे, अच्छी शिक्षा पाई थी, संसार का काफ़ी तजुरबा था, पर क्रियात्मक शक्ति से वंचित थे, सब कुछ जानते हुए भी कुछ न जानते थे। समाज उनकी आँखों में एक भयंकर भूत था जिससे सदैव डरते रहना चाहिए। उसे ज़रा भी रुष्ट किया तो फिर जान की ख़ैर नहीं। उनकी स्त्री जागेश्वरी उनका प्रतिबिम्ब थी, पति के विचार उसके विचार और पति की इच्छा उसकी इच्छा थी। दोनों प्राणियों में कभी मतभेद न होता था। जागेश्वरी शिव की उपासक थी. हृदयनाथ वैष्णव थे, पर दान और व्रत में दोनों को समान श्रद्धा थी। दोनों धर्मनिष्ठ थे, उससे कहीं अधिक, जितना सामान्यतः शिक्षित लोग हुआ करते हैं। इसका कदाचित् यह कारण था कि एक कन्या के सिवा उनके और कोई सन्तान न थी। उसका विवाह तेरहवें वर्ष में हो गया था, और माता-पिता को अब यही लालसा

थी कि भगवान् इसे पुत्रवती करें तो हम लोग नवासे के नाम अपना सब कुछ लिख-लिखाकर निश्चिन्त हो जायें।

किन्तु विधाता को कुछ और ही मंजूर था। कैलासकुमारी का अभी गौना भी न हुआ था, वह अभी तक यह भी न जानने पाई थी कि विवाह का आशय क्या है, कि उसका सोहाग उठ गया। वैधव्य ने उसके जीवन की अभिलाषाओं का दीपक बुझा दिया।

माता और पिता विलाप कर रहे थे, घर में कुहराम मचा हुआ था, पर कैलासकुमारी भौचक्की हो होकर सबके मुँह की ओर ताकती थी। उसकी समझ ही में न आता था यह लोग रोते क्यों हैं? माँ-बाप की एकलौती बेटी थी। माँ-बाप के अतिरिक्त वह किसी तीसरे व्यक्ति को अपने लिए आवश्यक न समझती थी। उसकी सुख-कल्पनाओं में अभी तक पति का आवेश न हुआ था। वह समझती थी, स्त्रियाँ पति के मरने पर इसी लिए रोती हैं कि वह उनका और उसके बच्चों का पालन करता है। मेरे घर में किस बात की कमी है? मुझे इसकी क्या चिन्ता है कि खायेंगे क्या? पहनेंगे क्या? मुझे जिस चीज की ज़रूरत होगी बाबूजी तुरंत ला देंगे, अम्माँ से जो चीज़ माँगूगी वह तुरंत दे देंगी। फिर रोऊँ क्यों? यह अपनी माँ को रोते देखती तो रोती, पति के शोक से नहीं, माँ के प्रेम से! कभी सोचती शायद यह लोग इस लिए रोते हैं कि कहीं मैं कोई ऐसी चीज न माँग बैठूँ जिसे वह दे न सकें। तो मैं ऐसी चीज़ माँगूगी ही क्यों? मैं अब भी तो उनसे कुछ

कभी, ग्रामोफ़ोन बजाकर उसे सुनाते। कैलासी इन सैर-सपाटों का खूब आनन्द उठाती। इतने सुख से उसके दिन कभी न गुजरे थे।

(२)

इस भाँति दो वर्ष बीत गये। कैलासी सैर-तमाशे की इतनी आदी हो गई कि एक दिन भी थिएटर न जाती तो बेकली-सी होने लगती! मनोरंजन नवीनता का दास है और समानता का शत्रु। थिएटरों के बाद सिनेमा की सनक सवार हुई सिनेमा के बाद मिस्मरेजिम और हिप्नोटिज्म के तमाशों की। ग्रामोफ़ोन के नये रिकार्ड आने लगे। संगीत का चस्का पड़ गया। बिरादरी में कहीं उत्सव होता तो माँ-बेटी अवश्य जातीं। कैलासी नित्य इसी नशे में डूबी रहती, चलती तो कुछ गुनगुनाती हुई, किसी से बातें करती तो वही थिएटर और सिनेमा की। भौतिक संसार से अब उसे कोई वास्ता न था, अब उसका निवास कल्पना-संसार में था। दूसरे लोक की निवासिनी होकर उसे प्राणियों से कोई सहानुभूति न रही, किसी के दुख पर जरा भी दया न आती। स्वभाव में उच्छृङ्खलता का विकास हुआ, अपनी सुरुचि पर गर्व करने लगी। सहेलियों से डींगें मारती, यहाँ के लोग मूर्ख हैं, यह सिनेमा की कदर क्या करेंगे। इसकी कदर तो पश्चिम के लोग करते हैं। वहाँ मनोरंजन की सामग्रियाँ उतनी ही आवश्यक हैं जितनी हवा। जभी तो वे इतने प्रसन्न-चित्त रहते हैं, मानो किसी बात की चिन्ता ही नहीं। यहाँ किसी को इसका रस ही नहीं, जिन्हें भगवान् ने सामर्थ्य भी दिया है वह भी सरेशाम से मुँह ढाँपकर पड़ रहते हैं।

सहेलियाँ कैलासी की यह गर्व-पूर्ण बातें सुनतीं और उसकी और भी प्रशंसा करतीं। वह उनका अपमान करने के आवेग में आप ही हास्यास्पद बन जाती थी।

पड़ोसियों में इन सैर-सपाटों की चरचा होने लगी। लोक-सम्मति किसी की रिआयत नहीं करती। किसी ने सिर पर टोपी टेढ़ी रक्खी और पड़ोसियों की आँखों में खुबा, कोई ज़रा अकड़-कर चला और पड़ोसियों ने आवाजे कसे। विधवा के लिए पूजा-पाठ है, तीर्थ-व्रत है, मोटा खाना है, मोटा पहनना है, उसे विनोद और विलास, राग और रंग की क्या ज़रूरत? विधाता ने उसके सुख के द्वार बन्द कर दिये हैं। लड़की प्यारी सही, लेकिन शरम और हया भी तो कोई चीज़ है! जब माँ बाप ही उसे सिर चढ़ाये हुए हैं तो उसका क्या दोष? मगर एक दिन आँखें खुलेंगी अवश्य। महिलाएँ कहतीं- बाप तो मर्द है, लेकिन माँ कैसी है, उसको ज़रा भी विचार नहीं कि दुनिया क्या कहेगी। कुछ उन्हीं की एक दुलारी बेटी थोड़े ही है, इस भाँति मन बढ़ाना अच्छा नहीं।

कुछ दिनों तक तो यह खिचड़ी आपस में पकती रही। अंत को एक दिन कई महिलाओं ने जागेश्वरी के घर पदार्पण किया। जागेश्वरी ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद एक महिला बोली—महिलाएँ रहस्य की बातें करने में बहुत अभ्यस्त होती हैं—बहन, तुम्हीं मजे में हो कि हँसी खुशी में दिन काट देती हो। हमें तो दिन पहाड़ हो जाता न कोई काम न धंधा, कोई कहाँ तक बातें करे?

दूसरी देवी ने आँखें मटकाते हुए कहा—अरे तो यह तो बदे की बात है। सभी के दिन हँसी-खुशी में कटें तो रोये कौन। यहाँ तो सुबह से शाम तक चक्की-चूल्हे ही से छुट्टी नहीं मिलती; किसी बच्चे को दस्त आ रहे हैं तो किसी को ज्वर चढ़ा हुआ है। कोई मिठाइयों की रट लगा रहा है तो कोई पैसों के लिए महनामथ मचाये हुए है। दिन-भर हाय हाय करते बीत जाता है। सारे दिन कठपुतलियों की भाँति नाचती रहती हूँ।

तीसरी रमणी ने इस कथन का रहस्यमय भाव से विरोध किया—बदे की बात नहीं है, वैसा दिल चाहिए। तुम्हें तो कोई राजसिंहासन पर बिठा दे तब भी तस्कीन न होगी। तब और भी हाय हाय करोगी।

इस पर एक वृद्धा ने कहा—नौज ऐसा दिल। यह भी कोई दिल है कि घर में चाहे आग लग जाय, दुनिया में कितना ही उपहास हो रहा हो, लेकिन आदमी अपने राग-रंग में मस्त रहे! वह दिल है कि पत्थर! हम गृहिणी कहलाती हैं, हमारा काम है अपनी गृहस्थी में रत रहना! आमोद-प्रमोद में दिन काटना हमारा काम नहीं।

और महिलाओं ने इस निर्दय व्यंग्य पर लज्जित होकर सिर झुका दिया। वे जागेश्वरी की चुटकियाँ लेनी चाहती थीं, उसके साथ बिल्ली और चूहे की निर्दय क्रीड़ा करना चाहती थीं। आहत को तड़पाना उनका उद्देश्य था। इस खुली हुई चोट ने उनके पर-पीड़न प्रेम के लिए कोई गुंजाइश न छोड़ी। तुरंत बात फेरी

स्त्री-शिक्षा पर बहस करने लगीं। किन्तु जागेश्वरी को ताड़ना मिल गई। स्त्रियों के विदा होने के बाद उसने जाकर पति से यह सारी कथा सुनाई। हृदयनाथ उन पुरुषों में न थे जो प्रत्येक अवसर पर अपनी आत्मिक स्वाधीनता का स्वाँग भरते हैं, हठधर्मी को आत्म-स्वातंत्र्य के नाम से छिपाते हैं। वह सचिन्त भाव से बोले—तो अब क्या होगा ?

जागेश्वरी—तुम्हीं कोई उपाय सोचो।

हृदयनाथ—पड़ोसियों ने जो आक्षेप किया है वह सर्वथा उचित है। कैलासकुमारी के स्वभाव में मुझे एक विचित्र अन्तर दिखाई दे रहा है। मुझे स्वयं ज्ञात हो रहा है कि उसके मन-बहलाव के लिए हम लोगों ने जो उपाय निकाला है वह मुनासिब नहीं है। उनका यह कथन सत्य है कि विधवाओं के लिए यह आमोद-विनोद वर्जित है। अब हमें यह परिपाटी छोड़नी पड़ेगी।

जागेश्वरी—लेकिन कैलासी तो इन खेल-तमाशों के बिना एक दिन भी नहीं रह सकती।

हृदयनाथ—उसकी मनोवृत्तियों को बदलना पड़ेगा।

(३)

शनैः शनैः यह विलासोन्माद शान्त होने लगा। वासना का तिरस्कार किया जाने लगा। पंडितजी संध्या-समय ग्रामोफोन न बजाकर कोई धर्म-ग्रन्थ पढ़कर सुनाते। स्वाध्याय, संयम, उपासना में माँ-बेटी रत रहने लगीं। कैलासी को गुरुजी ने दीक्षा दी, मुहल्ले और बिरादरी की स्त्रियाँ आईं, उत्सव मनाया गया।

माँ-बेटी अब किश्ती पर सैर करने के लिए गंगा न जातीं, बल्कि नान करने के लिए। मंदिरों में नित्य जातीं। दोनों एकादशी का निर्जल व्रत रखने लगीं। कैलासी को गुरुजी नित्य संध्या-समय धर्मोपदेश करते। कुछ दिनों तक तो कैलासी को यह विचार-परिवर्तन बहुत कष्टजनक मालूम हुआ, पर धर्मनिष्ठा नारियों का स्वाभाविक गुण है, थोड़े ही दिनों में उसे धर्म से रुचि हो गई। अब उसे अपनी अवस्था का ज्ञान होने लगा था। विषय-वासना से चित्त आप ही आप खिंचने लगा। 'पति' का यथार्थ आशय समझ में आने लगा था। पति ही स्त्री का सच्चा मित्र, सच्चा पथ-प्रदर्शक और सच्चा सहायक है। पति-विहीन होना किसी घोर पाप का प्रायश्चित्त है। मैंने पूर्व-जन्म में कोई अकर्म किया होगा। पतिदेव जीवित होते तो मैं फिर माया में फँस जाती। प्रायश्चित्त का अवसर कहाँ मिलता! गुरुजी का वचन सत्य है कि परमात्मा ने तुम्हें पूर्व-कर्मों के प्रायश्चित्त का यह अवसर दिया है। वैधव्य यातना नहीं है, जीवोद्धार का साधन है। मेरा उद्धार त्याग, विराग, भक्ति और उपासना ही से होगा।

कुछ दिनों के बाद उसकी धार्मिक वृत्ति इतनी प्रबल हो गई कि अन्य प्राणियों से वह पृथक् रहने लगी, किसी को न छूती, महरियों से दूर रहती, सहेलियों से गले तक न मिलती, दिन में दो दो-तीन तीन बार स्नान करती, हमेशा कोई न कोई धर्म-ग्रन्थ पढ़ा करती। साधु-महात्माओं के सेवा-सत्कार में उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता। जहाँ किसी महात्मा के आने की खबर पाती उनके

दर्शनों के लिए विकल हो जाती। उनकी अमृतवाणी सुनने से जी न भरता। मन संसार से विरक्त होने लगा। तल्लीनता की अवस्था प्राप्त हो गई। घण्टों ध्यान और चिन्तन में मग्न रहती। सामाजिक बंधनों से घृणा हो गई। हृदय स्वाधीनता के लिए लालायित हो गया। यहाँ तक कि तीन ही बरसों में उसने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय कर लिया।

माँ-बाप को यह समाचार ज्ञात हुआ तो होश उड़ गये। माँ बोलीं—बेटी, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है कि तुम ऐसी बातें सोचती हो।

कैलासकुमारी—माया-मोह से जितनी जल्द निवृत्ति हो जाय उतना ही अच्छा।

हृदयनाथ—क्या अपने घर में रहकर माया-मोह से मुक्त नहीं हो सकती हो? माया-मोह का स्थान मन है, घर नहीं।

जागेश्वरी—कितनी बदनामी होगी!

कैलासकुमारी—अपने को भगवान् के चरणों पर अर्पण कर चुकी तो मुझे बदनामी की क्या चिन्ता?

जागेश्वरी—बेटी, तुम्हें न हो, हमको तो है। हमें तो तुम्हारा ही सहारा है। तुमने जो संन्यास ले लिया तो हम किस आधार पर जियेंगे?

कैलासकुमारी—परमात्मा ही सबका आधार है। किसी दूसरे प्राणी का आश्रय लेना भूल है।

दूसरे ही दिन यह बात मुहल्लेवालों के कानों में पहुँच गई।

जब कोई अवस्था असाध्य हो जाती है तो हम उस पर व्यंग्य करने लगते हैं। "यह तो होना ही था, नई बात क्या हुई, लड़कियों को इस तरह स्वच्छन्द नहीं कर दिया जाता, फूले न समाते थे कि लड़की ने कुल का नाम उज्ज्वल कर दिया। पुराण पढ़ती है, उपनिषद् और वेदान्त का पाठ करती है, धार्मिक समस्याओं पर ऐसी ऐसी दलीलें करती है कि बड़े बड़े विद्वानों की जबान बन्द हो जाती है, तो अब क्यों पछताते हैं।" भद्र पुरुषों में कई दिनों तक यही आलोचना होती रही। लेकिन जैसे अपने बच्चे के दौड़ते दौड़ते धम से गिर पड़ने पर हम पहले क्रोध के आवेश में उसे झिड़कियाँ सुनाते हैं, इसके बाद गोद में बिठाकर आँसू पोंछने और फुसलाने लगते हैं, उसी तरह इन भद्र पुरुषों ने व्यंग्य के बाद इस गुत्थी को सुलझाने का उपाय सोचना शुरू किया। कई सज्जन हृदयनाथ के पास आये और सिर झुकाकर बैठ गये। विषय का आरम्भ कैसे हो।

कई मिनट के बाद एक सज्जन ने कहा—सुना है डाक्टर गौड़ का प्रस्ताव आज बहुमत से स्वीकृत हो गया।

दूसरे महाशय बोले—यह लोग हिन्दू-धर्म का सर्वनाश करके छोड़ेंगे।

तीसरे महानुभाव ने फ़रमाया—सर्वनाश तो हो ही रहा है, अब और कोई क्या करेगा। जब हमारे साधु-महात्मा, जो हिन्दू-जाति के स्तम्भ हैं, इतने पतित हो गये हैं कि भोली-भाली युवतियों को बहकाने में संकोच नहीं करते तो, सर्वनाश होने में रह ही क्या गया।

हृदनाथ—यह विपत्ति तो मेरे सिर ही पड़ी हुई है। आप लोगों को तो मालूम होगा।

पहले महाशय -आप ही के सिर क्यों,हम सभी के सिर पड़ी हुई है।

दूसरे महाशय—समस्त जाति के सिर कहिए।

हृदयनाथ– उद्धार का कोई उपाय सोचिए।

पहले महाशय—आपने समझाया नहीं ?

हृदयनाथ—समझाके हार गया। कुछ सुनती ही नहीं।

तीसरे महाशय—पहले ही भूल हुई। उसे इस रास्ते पर डालना ही न चाहिए था।

पहले महाशय—उस पर पछताने से क्या होगा। सिर पर जो पड़ी है उसका उपाय सोचना चाहिए। आपने समाचारपत्रों में देखा होगा, कुछ लोगों की सलाह है कि विधवाओं से अध्यापकों का काम लेना चाहिए। यद्यपि मैं इसे भी बहुत अच्छा नहीं समझता, पर संन्यासिनी बनने से तो कहीं अच्छा है! लड़की अपनी आँखों के सामने तो रहेगी। अभिप्राय केवल यही है कि कोई ऐसा काम होना चाहिए जिसमें लड़की का मन लगे। किसी अवलम्ब के विना मनुष्य को भटक जाने की शंका सदैव बनी रहती है। जिस घर में कोई नहीं रहता उसमें चमगादड़ बसेरा लेते हैं।

दूसरे महाशय—सलाह तो अच्छी है। मुहल्ले की दस-पाँच कन्याएँ पढ़ने के लिए बुला ली जायें। उन्हें कितावें, गुड़ियाँ आदि इनाम मिलता रहे तो बड़े शौक से आयेंगी। लड़की का तो लग जायगा ?

हृदयनाथ—देखा चाहिए। भरसक समझाऊँगा।

ज्यों ही यह लोग बिदा हुए, हृदयनाथ ने कैलासकुमारी के सामने यह तजवीज़ पेश की। कैलासी को संन्यस्त के उच्चपद के सामने अध्यापिका बनना अपमानजनक जान पड़ता था। कहाँ वह महात्माओं का सत्संग, वह पर्वतों की गुफ़ा, वह सुरम्य प्राकृतिक दृश्य, वह हिमराशि की ज्ञान-मय ज्योति, वह मानसरोवर और कैलास की शुभ्र छटा, वह आत्मदर्शन की विशाल कल्पनाएँ, और कहाँ बालिकाओं को चिड़ियों की भाँति पढ़ाना। लेकिन हृदयनाथ कई दिनों तक लगातार सेवा-धर्म का माहात्म्य उसके हृदय पर अंकित करते रहे। सेवा ही वास्तविक संन्यास है। संन्यासी केवल अपनी मुक्ति का इच्छुक होता है, सेवा-व्रतधारी अपने को परमार्थ की वेदी पर बलि दे देता है। इसका गौरव कहीं अधिक है। देखो ऋषियों में दधीचि का जो यश है, हरिश्चन्द्र की जो कीर्ति है, उसकी तुलना और कहाँ की जा सकती है। संन्यास स्वार्थ है, सेवा त्याग है, आदि। उन्होंने इस कथन को उपनिषदों और वेद-मंत्रों से पुष्टि की। यहाँ तक कि धीरे धीरे कैलासी के विचारों में परिवर्तन होने लगा। पंडितजी ने मुहल्लेवालों की लड़कियों को एकत्र किया, पाठशाला का जन्म हो गया। नाना प्रकार के चित्र और खिलौने मँगाये गये। पंडितजी स्वयं कैलासकुमारी के साथ लड़कियों को पढ़ाते। कन्याएँ शौक़ से आतीं। उन्हें यहाँ की पढ़ाई खेल मालूम होती। थोड़े ही दिनों में पाठशाला की धूम हो गई, अन्य मुहल्लों की कन्याएँ भी आने लगीं।

(४)

कैलासकुमारी की सेवा-प्रवृत्ति दिनोंदिन तीव्र होने लगी। दिनभर लड़कियों को लिये रहती, कभी पढ़ाती, कभी उनके साथ खेलती, कभी सीना-पिरोना सिखाती। पाठशाला ने परिवार का रूप धारण कर लिया। कोई लड़की बीमार हो जाती तो तुरन्त उसके घर जाती, उसकी सेवा-शुश्रूषा करती, गाकर या कहानियाँ सुनाकर उसका दिल बहलाती।

पाठशाला को खुले हुए साल-भर हुआ था। एक लड़की को, जिससे वह बहुत प्रेम करती थी, चेचक निकल आई। कैलासी उसे देखने गई। माँ-बाप ने बहुत मना किया पर उसने न माना, कहा तुरत लौट आऊँगी। लड़की की हालत खराब थी। कहाँ तो रोते रोते तालू सूखता था, कहाँ कैलासी को देखते ही मानो सारे कष्ट भाग गये। कैलासी एक घंटे तक वहाँ रही। लड़की बराबर उससे बातें करती रही। लेकिन जब वह चलने को उठी तो लड़की ने रोना शुरू किया। कैलासी मजबूर होकर बैठ गई थोड़ी देर के बाद जब वह फिर उठी तो फिर लड़की की यही दशा हो गई। लड़की उसे किसी तरह छोड़ती ही न थी। सारा दिन गुजर गया। रात को भी लड़की ने न आने दिया। हृदयनाथ उसे बुलाने को बार बार आदमी भेजते पर वह लड़की को छोड़कर न जा सकती। उसे ऐसी शंका होती थी कि मैं यहाँ से चली और लड़की हाथ से गई। उसकी माँ विमाता थी। इससे कैलासी को उसके ममत्व पर विश्वास न होता था। इस प्रकार वह तीन दिनों तक

वहाँ रही। आठों पहर बालिका के सिरहाने बैठी पंखा झलती रहती। बहुत थक जाती तो दीवार से पीठ टेक लेती। चौथे दिन लड़की की हालत कुछ सँभलती हुई मालूम हुई तो वह अपने घर आई। मगर अभी स्नान भी न करने पाई थी कि आदमी पहुँचा—जल्द चलिए लड़की रो रोकर जान दे रही है।

हृदयनाथ ने कहा—कह दो अस्पताल से कोई नर्स बुला लें।

कैलासकुमारी—दादा, आप व्यर्थ में झुँझलाते हैं। उस बेचारी की जान बच जाये, मैं तीन दिन नहीं, तीन महीने उसकी सेवा करने को तैयार हूँ। आखिर यह देह किस दिन काम आयेगी।

हृदयनाथ—तो और कन्याएँ कैसे पढ़ेंगी?

कैलासी—दो-एक दिन में वह अच्छी हो जायगी, दाने मुरझाने लगे हैं, तब तक आप ज़रा इन लड़कियों की देख-भाल करते रहिएगा।

हृदयनाथ—यह बीमारी छूत से फैलती है।

कैलासी—(हँसकर) मर जाऊँगी तो आपके सिर से एक विपत्ति टल जायगी।

यह कहकर उसने उधर की राह ली। भोजन की थाली परसी रह गई।

तब हृदयनाथ ने जागेश्वरी से कहा—जान पड़ता है बहुत जल्द यह पाठशाला भी बन्द करनी पड़ेगी।

जागेश्वरी—विना माँझी के नाव पार लगना कठिन है। जिधर हवा पाती है उधर ही बह जाती है।

हृदयनाथ—जो रास्ता निकालता हूँ वही कुछ दिनों के बाद किसी दलदल में फँसा देता है। अब फिर बदनामी के सामान होते नज़र आ रहे हैं। लोग कहेंगे लड़की दूसरों के घर जाती है और कई कई दिन पड़ी रहती है। क्या करूँ, कह दूँ, लड़कियों को न पढ़ाया करो ?

जागेश्वरी—इसके सिवा और हो ही क्या सकता है ?

कैलासकुमारी दो दिन के बाद लौटी तो हृदयनाथ ने पाठशाला बन्द कर देने की समस्या उसके सामने रक्खी। कैलासी ने तीव्र स्वर से कहा—अगर आप को बदनामी का इतना भय है तो मुझे विष दे दीजिए। इसके सिवा बदनामी से बचने का और कोई उपाय नहीं है।

हृदयनाथ—बेटी, संसार में रहकर तो संसार की-सी करनी ही पड़ेगी।

कैलासी—तो कुछ मालूम भी तो हो कि संसार मुझसे क्या चाहता है। मुझमें जीव है, चेतना है, जड़ क्योंकर बन जाऊँ। मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को अभागिनी, दुखिया समझूँ और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूँ। ऐसा क्यों करूँ ? संसार मुझे जो चाहे समझे, मैं अपने को अभागिनी नहीं समझती। मैं अपने आत्म-सम्मान की रक्षा आप कर सकती हूँ। मैं इसे अपना घोर अपमान समझती हूँ कि पग पग पर मुझ पर शंका की जाय, नित्य कोई चरवाहों की भाँति मेरे पीछे लाठी लिये घूमता रहे कि किसी के खेत में न जा पड़ूँ। यह दशा मेरे लिए असह्य है।

यह कहकर कैलासकुमारी वहाँ से चली गई कि कहीं मुँह से अनर्गल शब्द न निकल पड़ें। इधर कुछ दिनों से उसे अपनी बेकसी का यथार्थ ज्ञान होने लगा था। स्त्री पुरुष की कितनी अधीन है, मानो स्त्री को विधाता ने इसी लिए बनाया है कि पुरुषों के अधीन रहे! यह सोचकर वह समाज के अत्याचार पर दाँत पीसने लगती थी

पाठशाला तो दूसरे ही दिन से बन्द हो गई, किन्तु उसी दिन से कैलासकुमारी को पुरुषों से जलन होने लगी। जिस सुख-भोग से प्रारब्ध हमें वंचित कर देता है उससे हमें द्वेष हो जाता है। ग़रीब आदमी इसी लिए तो अमीरों से जलता है और धन की निन्दा करता है। कैलासी बार बार झुँझलाती कि स्त्री क्यों पुरुष पर इतनी अवलम्बित है? पुरुष क्यों स्त्री के भाग्य का विधायक है? स्त्री क्यों नित्य पुरुषों का आश्रय चाहे, उनका मुँह ताके? इसी लिए न कि स्त्रियों में अभिमान नहीं है, आत्म-सम्मान नहीं है। नारी-हृदय के कोमल भाव, उसे कुत्ते का दुम हिलाना मालूम होने लगे। प्रेम कैसा? यह सब ढोंग है स्त्री पुरुष के अधीन है, उसकी खुशामद न करे, सेवा न करे, तो उसका निर्वाह कैसे हो।

एक दिन उसने अपने बाल गूँथे और जूड़े में एक गुलाब का फूल लगा लिया। माँ ने देखा तो ओठ से जीभ दबा ली। महरियों ने छाती पर हाथ रक्खे।

इसी तरह उसने एक दिन रंगीन रेशमी साड़ी पहन ली पड़ोसिनों में इस पर खूब आलोचनाएँ हुईं।

उसने एकादशी का व्रत रखना छोड़ दिया जो पिछले ८ बरसों से रखती आई थी कंघी और आईने को वह अब त्याज्य न समझती थी।

सहालग के दिन आये। नित्य-प्रति उसके द्वार पर से बरातें

होकर देखतीं। वर के रंग-रूप, आकार-प्रकार पर टीकाएँ होतीं जागेश्वरी से भी विना एक आँख देखे न रहा जाता। लेकिन कैलासकुमारी कभी भूलकर भी इन जलूसों को न देखती। कोई बरात या विवाह की बात चलाता तो वह मुँह फेर लेती। उसकी दृष्टि में वह विवाह नहीं, भोली-भाली कन्याओं का शिकार था। बरातों को यह शिकारियों के कुत्ते समझती यह विवाह नहीं है, स्त्री का बलिदान है।

(५)

तीज का व्रत आया। घरों में सफ़ाई होने लगी रमणियाँ इस व्रत को रखने की तैयारियाँ करने लगीं। जागेश्वरी ने भी व्रत का सामान किया। नई नई साड़ियाँ मँगवाईं। कैलासकुमारी के ससुराल से इस अवसर पर कपड़े, मिठाइयाँ और खिलौने आया करते थे। अब की भी आये। यह विवाहिता स्त्रियों का व्रत है। इसका फल है पति का कल्याण। विधवाएँ भी इस व्रत का यथोचित रीति से पालन करती हैं। पति से उनका सम्बन्ध शारीरिक नहीं, वरन् आध्यात्मिक होता है। उसका इस जीवन के साथ अन्त नहीं होता, अनन्त काल तक जीवित रहता है। कैलासकुमारी अब तक यह

कौशल

(१)

पंडित बालकराम शास्त्री की धर्मपत्नी माया को बहुत दिनों से एक हार की लालसा थी और वह सैकड़ों ही बार पंडितजी से उसके लिए आग्रह कर चुकी थी; किन्तु पण्डितजी हीला हवाला करते रहते थे। यह तो साफ़ साफ़ न कहते थे कि मेरे पास रुपये नहीं हैं—इससे उनके पराक्रम में बट्टा लगता था—तर्कनाओं की शरण लिया करते थे। गहनों से कुछ लाभ नहीं, एक तो धातु अच्छी नहीं मिलती; उस पर सोनार रुपये के आठ आने कर देता है, और सबसे बड़ी बात यह कि घर में गहने रखना चोरों को नेवता देना है! घड़ीभर के श्रृंगार के लिए इतनी विपत्ति सिर पर लेना मूर्खों का काम है। बेचारी माया तर्क-शास्त्र न पढ़ी थी, इन युक्तियों के सामने निरुत्तर हो जाती थी। पड़ोसिनों को देख देखकर उसका जी ललचा करता था पर दुख किससे कहे। यदि पंडितजी ज्यादा मेहनत करने के योग्य होते तो यह मुश्किल आसान हो जाती। पर वे आलसी जीव थे, अधिकांश समय भोजन और विश्राम में व्यतीत किया करते थे। पत्नीजी की कटोक्तियाँ सुननी मंजूर थीं, सम्बन्धियों से आँखें चुरानी मंजूर थीं, लेकिन निद्रा की मात्रा में कमी न कर सकते थे।

(२)

एक दिन पंडितजी पाठशाला से आये तो देखा कि माया के गले में सोने का हार विराज रहा है। हार की चमक से उसकी मुख-ज्योति चमक उठी थी। उन्होंने उसे कभी इतनी सुन्दरी न समझा था। पूछा—यह हार किसका है?

माया बोली—पड़ोस में जो बाबू साहब रहते हैं उन्हीं की स्त्री का है। आज उनसे मिलने गई थी, यह हार देखा, बहुत पसन्द आया। तुम्हें दिखाने के लिए पहनकर चली आई। बस, ऐसा ही एक हार मुझे बनवा दो।

पंडित—दूसरे की चीज़ नाहक़ माँग लाईं। कहीं चोरी हो जाय तो हार तो बनवाना ही पड़े, ऊपर से बदनामी भी हो।

माया—मैं तो ऐसा ही हार लूँगी! २० तोले का है।

पंडित—फिर वही ज़िद!

माया—जब सभी पहनती हैं तो मैं ही क्यों न पहनूँ?

पंडित—सब कुएँ में गिर पड़ें तो तुम भी कुएँ में गिर पड़ोगी? सोचो तो इस वक्त इस हार के बनाने में ६००) लगेंगे। अगर १) प्रति सैकड़ा भी व्याज रख लिया जाय तो ५ वर्ष में ६००) के लगभग १०००) हो जायेंगे। लेकिन ५ वर्ष में तुम्हारा हार मुश्किल से ३००) का रह जायगा। इतना बड़ा नुक़सान उठाकर हार पहनने में क्या सुख? यह हार वापस कर दो, भोजन करो, और आराम से पड़ी रहो।

यह कहते हुए पंडितजी बाहर चले गये।

(३)

रात को एकाएक माया ने शोर मचाकर कहा—चोर चोर! हाय! घर में चोर। मुझे घसीटे लिये जाते हैं।

पंडितजी हकबकाकर उठे और बोले—कहाँ कहाँ? दौड़ो दौड़ो!

माया—मेरी कोठरी में गया है। मैंने उसकी परछाईं देखी।

पंडित—लालटेन लाओ, ज़रा मेरा लकड़ी उठा लेना।

माया—मुझसे तो मारे डरके उठा नहीं जाता!

कई आदमी बाहर से बोले—कहाँ है पंडितजी, कोई सेंद पड़ी है क्या?

माया—नहीं नहीं, खपरैल पर से उतरे हैं। मेरी नींद खुली तो कोई मेरे ऊपर झुका हुआ था। हाय राम! यह तो हार ही ले गया। पहने पहने सो गई थी। मुये ने गले से निकाल लिया। हाय भगवान्!

पंडित—तुमने हार उतार क्यों न दिया था?

माया—मैं क्या जानती थी कि आज ही यह मुसीबत सिर पड़नेवाली है, हाय भगवान्!

पंडित—अब हाय हाय करने से क्या होगा? अपने कर्मों को रोओ। इसी लिए कहा करता था कि सब घड़ी बराबर नहीं जाती, न-जाने कब क्या हो जाय। अब आई समझ में मेरी बात! देखो और कुछ तो नहीं ले गया?

पड़ोसी लालटेन लिये आ पहुँचे। घर में कोना कोना देखा

करियाँ देखीं, छत पर चढ़कर देखा, अगवाड़े-पिछवाड़े देखा, शौच-गृह में झाँका, कहीं चोर का पता न था।

एक पड़ोसी—किसी जानकार आदमी का काम है।

दूसरा पड़ोसी—बिना घर के भेदिये के कभी चोरी होती ही नहीं। और कुछ तो नहीं ले गया?

माया—और तो कुछ नहीं गया। बरतन सब पड़े हुए हैं। सन्दूक भी बन्द पड़े हुए हैं। निगोड़े को ले ही जाना था तो मेरी चीजें ले जाता। पराई चीज़ ठहरी। भगवान्, उन्हें कौन मुँह दिखाऊँगी।

पंडित—अब गहने का मज़ा मिल गया न?

माया—हाय भगवान्, यह अपजस बदा था।

पंडित—कितना समझाके हार गया, तुम न मानीं, न मानीं। बात की बात में ६००) निकल गये! अब देखूँ भगवान् कैसे [illegible] रखते हैं।

माया—अभागे मेरे घर का एक एक तिनका चुन ले जाते [illegible] मुझे इतना दुख न होता। अभी बेचारी ने नया ही बनवाया [illegible]

पंडित—खूब मालूम है २० तोले का था?

माया—२० ही तोले का तो कहती थीं।

पंडित—बधिया बैठ गई और क्या?

माया—कह दूँगी घर में चोरी हो गई। क्या जान लेंगी? [illegible]ब उनके लिए कोई चोरी थोड़े ही करने जायगा!

पंडित—तुम्हारे घर से चीज़ गई, तुम्हें देनी पड़ेगी। उन्हें

इससे क्या प्रयोजन कि चोर ले गया या तुमने उठा के रख लिया। पतियायेंगी ही नहीं।

माया—तो इतने रुपये कहाँ से आयेंगे?

पंडित—कहीं न कहीं से तो आयेंगे ही, नहीं तो लाज कैसे रहेगी; मगर की तुमने बड़ी भूल!

माया—भगवान् से मँगनी की चीज़ भी न देखी गई। मुझे काल ने घेरा था, नहीं तो घड़ीभर गले में डाल लेने से ऐसा कौनसा बड़ा सुख मिल गया? मैं हूँ ही अभागिनी!

पंडित—अब पछताने और अपने को कोसने से क्या फ़ायदा? चुप होके बैठो। पड़ोसिन से कह देना, घबराओ नहीं। तुम्हारी चीज़ जब तक लौटा न देंगे तब तक हमें चैन न आयेगा।

(४)

पंडित बालकराम को अब नित्य यही चिन्ता रहने लगी कि किसी तरह हार बने। यों अगर टाट उलट देते तो कोई बात न थी। पड़ोसिन को संतोष ही करना पड़ता, ब्राह्मण से डाँड़ कौन लेता, किन्तु पंडितजी ब्राह्मणत्व के गौरव को इतने सस्ते दामों न बेचना चाहते थे। आलस्य छोड़कर धनोपार्जन में दत्तचित्त हो गये।

६ महीने तक उन्होंने दिन को दिन और रात को रात नहीं जाना। दोपहर को सोना छोड़ दिया। रात को भी बहुत देर तक जागते। पहले केवल एक पाठशाला में पढ़ाया करते थे। इसके सिवा वह ब्राह्मण के लिए खुले हुए एक सौ एक व्यवसायों में सभी को निन्दनीय समझते थे। पर अब पाठशाला से आकर संध्या-समय

एक जगह 'भागवत की कथा' कहने जाते, वहाँ से लौटकर ११-१२ बजे रात तक जन्म-कुण्डलियाँ, वर्ष-फल आदि बनाया करते। प्रातःकाल मंदिर में 'दुर्गाजी का पाठ' करते। माया पंडितजी का अध्यवसाय देख देखकर कभी कभी पछताती कि कहाँ से कहाँ मैंने यह विपत्ति सिर पर ली। कहीं बीमार पड़ जायें तो लेने के देने पड़ें। उनका शरीर क्षीण होते देखकर उसे अब यह चिन्ता व्यथित करने लगी। यहाँ तक कि पाँच महीने गुज़र गये।

एक दिन संध्या-समय वह दिया-बत्ती करने जा रही थी कि पंडितजी आये, जेब से एक पुड़िया निकालकर उसके सामने फेंक दी और बोले—लो, आज तुम्हारे ऋण से मुक्त हो गया।

माया ने पुड़िया खोली तो उसमें सोने का हार था, उसकी चमक-दमक, उसकी सुन्दर बनावट देखकर उसके अन्तःस्थल में गुदगुदी-सी होने लगी। मुख पर आनन्द की आभा दौड़ गई। उसने कातर नेत्रों से देखकर पूछा—खुश होकर दे रहे हो या नाराज़ होकर?

पंडित—इससे क्या मतलब? ऋण तो चुकाना ही पड़ेगा, चाहे खुशी से हो या नाखुशी से!

माया—यह ऋण नहीं है।

पंडित—और क्या है? बदला सही।

माया—बदला भी नहीं है।

पंडित—फिर क्या है?

माया—तुम्हारी...निशानी!

पंडित—तो क्या ऋण के लिए दूसरा हार बनवाना पड़ेगा ?

माया—नहीं नहीं, वह हार चोरी नहीं गया था। मैंने झूठ-मूठ शोर मचाया था !

पंडित—सच ?

माया—हाँ, सच कहती हूँ।

पंडित—मेरी क़सम ?

माया—तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ।

पंडित—तो तुमने मुझसे कौशल किया था ?

माया—हाँ !

पंडित—तुम्हें मालूम है, तुम्हारे कौशल का मुझे क्या मूल्य देना पड़ा ?

माया—क्या ६००) से ऊपर ?

पंडित—बहुत ऊपर। इसके लिए मुझे अपने आत्मस्वातंत्र्य को बलिदान करना पड़ा है !

स्वर्ग की देवी

(१)

भाग्य की बात ! शादी-विवाह में आदमी का क्या अख्तियार ! जिससे ईश्वरने, या उनके नायबों—ब्राह्मणों—ने तय कर दी उससे हो गई। बाबू भारतदास ने लीला के लिए सुयोग्य वर खोजने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। लेकिन जैसा घर-वर चाहते थे वैसा न पा सके। वह लड़की को सुखी देखना चाहते थे, जैसा हर-एक पिता का धर्म है, किन्तु इसके लिए उनकी समझ में सम्पत्ति ही सबसे ज़रूरी चीज़ थी। चरित्र या शिक्षा का स्थान गौण था। चरित्र तो किसी के माथे पर लिखा नहीं रहता और शिक्षा का आजकल के ज़माने में मूल्य ही क्या ! हाँ, संपत्ति के साथ शिक्षा भी हो तो क्या पूछना ! ऐसा घर उन्होंने बहुत ढूँढ़ा, पर न मिला। ऐसे घर हैं ही कितने जहाँ दोनों पदार्थ मिलें ? दो-चार घर मिले भी तो अपनी बिरादरी के न थे। बिरादरी भी मिली, तो ज़ायचा न मिला, ज़ायचा भी मिला तो शरतें तय न हो सकीं। इस तरह मजबूर होकर भारतदास को लीला का विवाह लाला संतसरन के लड़के सीतासरन से करना पड़ा। अपने बाप का एकलौता बेटा था, थोड़ी-बहुत शिक्षा भी पाई थी, बातचीत सलीक़े से करता

था, मामले-मुक़द्दमे समझता था और ज़रा दिल का रँगील था। सबसे बड़ी बात यह थी कि रूपवान्, बलिष्ठ, प्रसन्न-मुख, साहसी आदमी था। मगर विचार वही बाबा आदम के ज़माने के थे। पुरानी जितनी बातें हैं सब अच्छी, नई जितनी बातें हैं सब ख़राब! जायदाद के विषय में तो ज़मींदार साहब नये से नये दफ़ों का व्यवहार करते थे, वहाँ अपना कोई अख़्तियार न था। लेकिन सामाजिक प्रथाओं के कट्टर पक्षपाती थे। सीतासरन अपने बाप को जो करते या कहते देखता वही ख़ुद भी कहता और करता था। उसमें ख़ुद कुछ सोचने की शक्ति ही न थी। बुद्धि की मंदता बहुधा सामाजिक अनुदारता के रूप में प्रकट होती है।

(२)

लीला ने जिस दिन घर में पाँव रक्खा उसी दिन से उसकी परीक्षा शुरू हुई। वे सभी काम, जिसकी उसके घर में तारीफ़ होती थी, यहाँ वर्जित थे। उसे बचपन से ताज़ी हवा पर जान देना सिखाया गया था, यहाँ उसके सामने मुँह खोलना भी पाप था। बचपन से सिखाया गया था कि रोशनी ही जीवन है, यहाँ रोशनी के दर्शन भी दुर्लभ थे। घर पर अहिंसा, क्षमा और दया ईश्वरीय गुण बताये गये थे, यहाँ इनका नाम लेने की भी स्वाधीनता न थी! संतसरन बड़े तीखे, गुस्सेवर आदमी थे, नाक पर मक्खी न बैठने देते। धूर्तता, और छल-कपट से ही उन्होंने जायदाद पैदा की थी और उसी को सफल जीवन का मंत्र समझते थे। उनकी पत्नी उनसे भी दो अंगुल ऊँची थीं। मजाल क्या कि बहू अपनी

अँधेरी कोठरी के द्वार पर खड़ी हो जाय, या कभी छत पर टहल सके। प्रलय आ जाता, आसमान सिर पर उठा लेतीं। उन्हें बकने का मरज़ था। दाल में नमक का ज़रा तेज़ हो जाना उन्हें दिन-भर बकने के लिए काफ़ी बहाना था। मोटी-ताज़ी महिला थीं, छींट का घाघरेदार लहँगा पहने, पानदान बग़ल में रक्खे, गहनों से लदी हुई, सारे दिन बरोठे में माँची पर बैठी रहती थीं। क्या मजाल कि घर में उनकी इच्छा के विरुद्ध एक पत्ती भी हिल जाय! बहू की नई नई आदतें देख देख जला करती थीं। अब काहे को आबरू रहेगी। मुँडेर पर खड़ी होकर झाँकती है। मेरी लड़की ऐसी दीदा-दिलेर होती तो गला घोट देती। न-जाने इसके देश में कौन लोग बसते हैं! गहने नहीं पहनती। जब देखो नंगी-बुची बनी बैठी रहती है। यह भी कोई अच्छे लच्छन हैं। लीला के पीछे सीता-सरन पर भी फटकार पड़ती। तुझे भी चाँदनी में सोना अच्छा लगता है क्यों? तू भी अपने को मर्द कहेगा? वह मर्द कैसा कि औरत उसके कहने में न रहे। दिनभर घर में घुसा रहता है! मुँह में ज़बान नहीं है! समझाता क्यों नहीं?

सीतासरन कहता—अम्माँ, जब कोई मेरे समझाने से माने तब तो?

माँ—मानेगी क्यों नहीं, तू मर्द है कि नहीं? मर्द वह चाहिए कि कड़ी निगाह से देखे तो औरत काँप उठे!

सीतासरन—तुम तो समझाती ही रहती हो।

माँ—मेरी उसे क्या परवा। समझती होगी बुढ़िया चार दिन में मर जायगी तब तो मैं मालकिन हो ही जाऊँगी।

सीतासरन—तो मैं भी तो उसकी बातों का जवाब नहीं दे पाता। देखती नहीं हो कितनी दुर्बल हो गई है। वह रंग ही नहीं रहा। उस कोठरी में पड़े पड़े उसकी दशा बिगड़ती जाती है।

बेटे के मुँह से ऐसी बातें सुनकर माता आग हो जाती और सारे दिन जलती; कभी भाग्य को कोसती, कभी समय को।

सीतासरन माता के सामने तो ऐसी बातें करता लेकिन लीला के सामने जाते ही उसकी मति बदल जाती थी। वह वही बातें करता जो लीला को अच्छी लगतीं। यहाँ तक कि दोनों वृद्धा की हँसी उड़ाते। लीला को इस घर में और कोई सुख न था। वह सारे दिन कुढ़ती रहती थी। कभी चूल्हे के सामने न बैठी थी, पर यहाँ पँसेरियों आटा थोपना पड़ता, मजूरों और टहलुओं के लिए भी रोटियाँ पकानी पड़तीं। कभी कभी वह चूल्हे के सामने बैठी घंटों रोती। यह बात न थी कि यह लोग कोई महराज-रसोइया न रख सकते हों, पर घर की पुरानी प्रथा यही थी कि बहू खाना पकावे और उस प्रथा का निभाना ज़रूरी था। सीतासरन को देखकर लीला का संतप्त हृदय एक क्षण के लिए शान्त हो जाता था।

गरमी के दिन थे और संध्या का समय। बाहर हवा चलती थी, भीतर देह फुकती थी। लीला कोठरी में बैठी एक किताब देख रही थी कि संतसरन ने आकर कहा—यहाँ तो बड़ी गरमी है, बाहर बैठो।

लीला—यह गरमी उन तानों से अच्छी है जो अभी सुनने पड़ेंगे।

सीतासरन—आज अगर बोलीं तो मैं भी बिगड़ जाऊँगा।

लीला—तब तो मेरा घर में रहना भी मुश्किल हो जायगा।

सीतासरन—बला से, अलग ही रहेंगे!

लीला—मैं तो मर भी जाऊँ तो भी अलग न हूँ। वह जो कुछ कहती-सुनती हैं, अपनी समझ में मेरे भले ही के लिए कहती-सुनती हैं। उन्हें मुझसे कुछ दुश्मनी थोड़े ही है। हाँ, हमें उनकी बातें अच्छी न लगें यह दूसरी बात है। उन्होंने खुद वह सब कष्ट झेले हैं जो वह मुझे झेलवाना चाहती हैं। उनके स्वास्थ्य पर उन कष्टों का ज़रा भी असर नहीं पड़ा। वह इस ६५ वर्ष की उम्र में मुझसे कहीं टाँठी हैं। फिर उन्हें कैसे मालूम हो कि इन कष्टों से स्वास्थ्य बिगड़ सकता है?

सीतासरन ने उसके मुरझाये हुए मुख की ओर करुण-नेत्रों से देखकर कहा—तुम्हें इस घर में आकर बहुत दुख सहना पड़ा। यह घर तुम्हारे योग्य न था। तुमने पूर्व-जन्म में ज़रूर कोई पाप किया होगा।

लीला ने पति के हाथों से खेलते हुए कहा—यहाँ न आती तो तुम्हारा प्रेम कैसे पाती?

(३)

पाँच साल गुज़र गये। लीला दो बच्चों की माँ हो गई। एक लड़का था, दूसरी लड़की। लड़के का नाम जानकीसरन रक्खा गया और लड़की का नाम कामिनी। दोनों बच्चे घर को गुल-ज़ार किये रहते थे। लड़की दादा से हिली थी, लड़का दादी से। दोनों शोख़ और शरीर थे। गाली दे बैठना, मुँह चिढ़ा देना, तो

उनके लिए मामूली बात थी। दिनभर खाते और आये दिन बीमार पड़े रहते। लीला ने तो खुद सभी कष्ट झेल लिये थे, पर बच्चों में बुरी आदतों का पड़ना उसे बहुत बुरा मालूम होता था। किन्तु उसकी कौन सुनता था। बच्चों की माता होकर उसकी अब गणना ही न रही थी। जो कुछ थे बच्चे थे, वह कुछ न थी। उसे किसी बच्चे को डाटने का भी अधिकार न था, सास फाड़ खाती थी।

सबसे बड़ी विपत्ति यह थी कि उसका स्वास्थ्य अब और भी ख़राब हो गया था। प्रसव-काल में उसे वे सभी अत्याचार सहने पड़े जो अज्ञान, मूर्खता और अंध-विश्वास ने सौर की रक्षा के लिए गढ़ रक्खे हैं। उस काल-कोठरी में, जहाँ न हवा का गुज़र था, न प्रकाश का, न सफ़ाई का, चारों ओर दुर्गंध, सील और गंदगी भरी हुई थी, उसका कोमल शरीर सूख गया। एक बार जो कसर रह गई थी वह दूसरी बार पूरी हो गई। चेहरा पीला पड़ गया, आँखें धँस गईं। ऐसा मालूम होता, बदन में खून ही नहीं रहा। सूरत ही बदल गई।

गरमियों के दिन थे। एक तरफ़ आम पके, दूसरी तरफ़ खरबूजे। इन दोनों मेवों की ऐसी अच्छी फसल पहले कभी न हुई थी। अब की इनमें इतनी मिठास न-जाने कहाँ से आ गई थी कि कितना ही खाओ मन न भरे। संतसरन के इलाक़े से आम और खरबूजे के टोकरे भरे चले आते थे। सारा घर खूब उछल उछल खाता था। बाबू साहब पुरानी हड्डी के आदमी थे। सवेरे एक सैकड़े

आमों का नाश्ता करते, फिर पंसेरी-भर ख़रबूजे चट कर जाते। मालकिन उनसे पीछे रहनेवाला न थीं। उन्होंने तो एक वक्त का भोजन ही बंद कर दिया। अनाज सड़नेवाली चीज़ नहीं। आज नहीं कल ख़रच हो जायगा। आम और ख़रबूजे तो एक दिन भी नहीं ठहर सकते। शुदनी थी और क्या। यों ही हर साल दोनों चीज़ों की रेलपेल होती थी, पर किसी को कभी कोई शिकायत न होती थी। कभी पेट में गिरानी मालूम हुई तो हड़ की फंकी मार ली। एक दिन बाबू संतसरन के पेट में मीठा मीठा दर्द होने लगा। आपने उसकी परवा न की। आम खाने बैठ गये। सैकड़ा पूरा करके उठे ही थे कि क़ै हुई। गिर पड़े। फिर तो तिल तिल पर क़ै और दस्त होने लगे। हैज़ा हो गया। शहर से डाक्टर बुलाये गये लेकिन उनके आने के पहले ही बाबू साहब चल बसे थे। रोना-पीटना मच गया। संध्या होते होते लाश घर से निकली। लोग दाह-क्रिया करके आधी रात को लौटे तो मालकिन को भी क़ै और दस्त हो रहे थे। फिर दौड़-धूप शुरू हुई। लेकिन सूर्य निकलते निकलते वह भी सिधार गईं। स्त्री-पुरुष जीवन पर्यन्त एक दिन के लिए भी अलग न हुए थे। संसार से भी साथ ही साथ गये, सूर्यास्त के समय पति ने प्रस्थान किया, सूर्योदय के समय स्त्री ने।

लेकिन मुसीबत का अभी अन्त न हुआ था। लीला तो संस्कार की तैयारियों में लगी थी; मकान की सफ़ाई की तरफ़ किसी ने ध्यान न दिया। तीसरे दिन दोनों बच्चे दादा दादी के

लिए रोते रोते बैठके में जा पहुँचे। वहाँ एक आले पर खरबूजा कटा हुआ पड़ा था, दो-तीन क़लमी आम भी कटे रक्खे थे। इन पर मक्खियाँ भिनक रही थीं जानकी ने एक तिपाई पर चढ़कर दोनों चीज़ें उतार लीं और दोनों ने मिलकर खाईं। शाम होते होते दोनों को हैज़ा हो गया और दोनों माँ-बाप को रोता छोड़ चल बसे। घर अँधेरा हो गया। तीन दिन पहले जहाँ चारों तरफ़ चहल-पहल थी, वहाँ अब सन्नाटा छाया हुआ था, किसी के रोने की आवाज़ भी न सुनाई देती थी। रोता ही कौन? ले-देके कुल दो प्राणी रह गये थे। और उन्हें रोने की भी सुधि न थी।

(४)

लीला का स्वास्थ्य पहले भी कुछ अच्छा न था, अब तो वह और भी बेजान हो गई। उठने-बैठने की शक्ति भी न रही। हरदम खोई-सी रहती, न कपड़े-लत्ते की सुधि थी, न खाने-पीने की। उसे न घर से वास्ता था न बाहर से। जहाँ बैठती वहीं बैठी रह जाती। महीनों कपड़े न बदलती, सिर में तेल न डालती। बच्चे ही उसके प्राणों के आधार थे। जब वही न रहे तो मरना और जीना बराबर था। रात-दिन यही मनाया करती कि भगवान् यहाँ से ले चलो। सुख-दुख सब भुगत चुकी। अब सुख की लालसा नहीं है। लेकिन बुलाने से मौत किसी को आई है?

सीतासरन भी पहले तो बहुत रोया-धोया, यहाँ तक कि घर छोड़कर भागा जाता था, लेकिन ज्यों ज्यों दिन गुज़रते थे बच्चों का शोक उसके दिल से मिटता जाता था। संतान का दुख तो

कुछ माता ही को होता है। धीरे धीरे उसका जी सँभल गया। पहले की भाँति मित्रों के साथ हँसी-दिल्लगी होने लगी। यारों ने और भी चंग पर चढ़ाया। अब घर का मालिक था, जो चाहे कर सकता था। कोई उसका हाथ रोकनेवाला न था। सैर-सपाटे करने लगा। कहाँ तो लीला को रोते देख उसकी आँखें सजल हो जाती थीं, कहाँ अब उसे उदास और शोक-मग्न देखकर झुँझला उठता। जिन्दगी रोने ही के लिए तो नहीं है। ईश्वर ने लड़के दिये थे, ईश्वर ही ने छीन लिये, क्या लड़कों के पीछे प्राण दे देना होगा! लीला यह बातें सुनकर भौचक रह जाती। पिता के मुँह से ऐसे शब्द निकल सकते हैं! संसार में ऐसे प्राणी भी हैं!

होली के दिन थे। मरदाने में गाना-बजाना हो रहा था। मित्रों की दावत का भी सामान किया गया था। अन्दर लीला ज़मीन पर पड़ी हुई रो रही थी। त्योहारों के दिन उसे रोते ही कटते थे। आज बच्चे होते तो अच्छे अच्छे कपड़े पहने कैसे उछलते-फिरते! वही न रहे तो कहाँ की तीज और कहाँ के त्योहार!

सहसा सीतासरन ने आकर कहा—क्या दिनभर रोती ही रहोगी! ज़रा कपड़े तो बदल डालो, आदमी बन जाओ। यह क्या तुमने अपनी गत बना रक्खी है?

लीला—तुम जाओ अपनी महफ़िल में बैठो, तुम्हें मेरी क्या फ़िक्र पड़ी है?

सीतासरन—क्या दुनिया में और किसी के लड़के नहीं मरते? तुम्हारे ही सिर यह मुसीबत आई है?

लीला—यह बात कौन नहीं जानता। अपना अपना दिल ही तो है। उस पर किसी का बस है?

सीतासरन—मेरे साथ भी तो तुम्हारा कुछ कर्तव्य है?

लीला ने कुतूहल से पति को देखा, मानो उनका आशय नहीं समझी। फिर मुँह फेरकर रोने लगी।

सीतासरन—मैं अब इस नहूसत का अन्त कर देना चाहता हूँ। अगर तुम्हारा अपने दिल पर क़ाबू नहीं है तो मेरा भी अपने दिल पर क़ाबू नहीं है। मैं जिन्दगीभर मातम नहीं मना सकता।

लीला—तुम राग-रंग मनाते हो, मैं तुम्हें मना तो नहीं करती! मैं रोती हूँ तो क्यों नहीं रोने देते?

सीतासरन—मेरा घर रोने के लिए नहीं है।

लीला—अच्छी बात है, तुम्हारे घर में न रोऊँगी।

(५)

लीला ने देखा, मेरे स्वामी मेरे हाथों से निकले जा रहे हैं। उन पर विषय का भूत सवार हो गया है और कोई समझानेवाला नहीं। वह अपने होश में नहीं हैं। मैं क्या करूँ। अगर मैं चली जाती हूँ तो थोड़े ही दिनों में सारा घर मिट्टी में मिल जायगा और इनका वही हाल होगा जो स्वार्थी मित्रों के चंगुल में फँसे हुए नौजवान रईसों का होता है। कोई कुलटा घर में आ जायगी और इनका सर्वनाश कर देगी। ईश्वर! मैं क्या करूँ। अगर इन्हें कोई बीमारी हो जाती तो क्या मैं उस दशा में इन्हें छोड़कर चली

जाती ? कभी नहीं। मैं तन-मन से इनकी सेवा-शुश्रूषा करती ईश्वर से प्रार्थना करती, देवताओं की मनौतियाँ करती। माना इन्हें शारीरिक रोग नहीं है, लेकिन मानसिक रोग अवश्य है। जो आदमी रोने की जगह हँसे और हँसने की जगह रोये उसके दीवाना होने में क्या संदेह है! मेरे चले जाने से इनका सर्वनाश हो जायगा। इन्हें बचाना मेरा धर्म है।

हाँ, मुझे अपना शोक भूल जाना होगा। रोऊँगी—रोना तो मेरी तक़दीर में लिखा ही है—रोऊँगी लेकिन हँस हँसकर। अपने भाग्य से लड़ूँगी। जो जाते रहे उनके नाम को रोने के सिवा और कर ही क्या सकती हूँ, लेकिन जो है उसे न जाने दूँगी। आ ऐ टूटे हुए हृदय! आज तेरे टुकड़ों को जमा करके एक समाधि बनाऊँ और अपने शोक को उसके हवाले कर दूँ। ओ रोनेवाली आँखें, आओ और मेरे आँसुओं को अपनी विहसित छटा में छिपा लो। आओ मेरे आभूषणो, मैंने बहुत दिनों तक तुम्हारा अपमान किया, मेरा अपराध क्षमा करो, तुम मेरे भले दिनों के साथी हो, तुमने मेरे साथ बहुत विहार किये हैं, अब इस संकट में मेरा साथ दो, मगर देखो दग़ा न करना, मेरे भेदों को छिपाये रखना!!

लीला सारी रात बैठी अपने मन से यही बातें करती रही। उधर मरदाने में धमा-चौकड़ी मची हुई थी। सीतासरन नशे में चूर कभी गाता था, कभी तालियाँ बजाता था। उसके मित्र लोग भी उसी रङ्ग में रँगे हुए थे। मालूम होता था इनके लिए भोग-विलास के सिवा और कोई काम ही नहीं है।

पिछले पहर को महफ़िल में सन्नाटा हो गया। हू-हा की आवाज़ें बन्द हो गईं। लीला ने सोचा, क्या लोग कहीं चले गये, या सो गये? एकाएक सन्नाटा क्यों छा गया। जाकर देहलीज़ में खड़ी हो गई और बैठक में झाँककर देखा। सारी देह में एक ज्वाला-सी दौड़ गई। मित्र लोग विदा हो गये थे। समाजियों का भी पता न था। केवल एक रमणी मसनद पर लेटी हुई थी और सीतासरन उसके सामने झुका हुआ उससे बहुत धीरे धीरे बातें कर रहा था। दोनों के चेहरों और आँखों से उनके मन के भाव साफ़ झलक रहे थे। एक की आँखों में अनुराग था, दूसरी की आँखों में कटाक्ष। एक भोला-भाला हृदय एक मायाविनी रमणी के हाथों लुटा जाता था! लीला की सम्पत्ति को उसकी आँखों के सामने एक छलिनी चुराये लिये जाती थी। लीला को ऐसा क्रोध आया कि इसी समय चलकर इस कुलटा को आड़े हाथों लूँ, ऐसा दुत्कारूँ, कि वह भी याद करे, खड़े खड़े निकाल दूँ। वह पत्नी-भाव जो बहुत दिनों से सो रहा था जाग उठा और उसे विकल करने लगा। पर उसने ज़ब्त किया। वेग से दौड़ती हुई तृष्णाएँ अकस्मात् न रोकी जा सकती थीं। वह उलटे पाँव भीतर लौट आई और मन को शान्त करके सोचने लगी—वह रूप-रंग में, हाव-भाव में, नखरे-तिल्ले में उस दुष्टा की बराबरी नहीं कर सकती। बिलकुल चाँद का टुकड़ा है, अंग अंग में स्फूर्ति भरी हुई है, पोर पोर में मद छलक रहा है। उसकी आँखों में कितनी तृष्णा है, तृष्णा नहीं, बल्कि ज्वाला! लीला उसी वक्त आईने के सामने

गई। आज कई महीनों के बाद उसने आईने में अपनी सूरत देखी। उसके मुख से एक आह निकल गई। शोक ने उसकी काया-पलट कर दी थी। उस रमणी के सामने वह ऐसी लगती थी जैसे गुलाब के सामने जूही का फूल !

(६)

सीतासरन का खुमार शाम को टूटा। आँखें खुलीं तो सामने लीला को खड़ी मुसकिराते देखा। उसकी अनोखी छवि आँखों में समा गई। ऐसे खुश हुए मानो बहुत दिनों के वियोग के बाद उससे भेंट हुई हो। उसे क्या मालूम था कि यह रूप भरने के लिए लीला ने कितने आँसू बहाये हैं, केशों में यह फूल गूँथने के पहले आँखों से कितने मोती पिरोये हैं। उन्होंने एक नवीन प्रेमोत्साह से उठकर उसे गले लगा लिया और मुसकिराकर बोले—आज तो तुमने बड़े बड़े शस्त्र सजा रक्खे हैं, कहाँ भागूँ ?

लीला ने अपने हृदय की ओर उंगली दिखाकर कहा—यहाँ आ बैठो। बहुत भागे फिरते हो, अब तुम्हें बाँधकर रक्खूँगी। बाग़ की बहार का आनंद तो उठा चुके, अब इस अँधेरी कोठरी को भी देख लो।

सीतासरन ने लज्जित होकर कहा—उसे अँधेरी कोठरी मत कहो लीला ! वह प्रेम का मानसरोवर है !

इतने में बाहर से किसी मित्र के आने की ख़बर आई। सीतासरन चलने लगे तो लीला ने उनका हाथ पकड़कर कहा—मैं न जाने दूँगी

सीतासरन—अभी आता हूँ।

लीला—मुझे डर लगता है कहीं तुम चले न जाओ।

सीतासरन—इस शीतल, सुखद छवि का अमृत पीने के बाद भी?

सीतासरन बाहर आये तो मित्र महाशय बोले—आज दिन-भर सोते ही रहे क्या? बहुत ख़ुश नज़र आते हो। इस वक़्त तो वहाँ चलने की ठहरी थी न? तुम्हारी राह देख रही हैं।

सीतासरन—चलने को तो तैयार हूँ लेकिन लीला जाने नहीं देती।

मित्र—निरे गाउदी ही रहे! आ गये फिर बीबी के पंजे में! फिर किस बिरते पर गरमाये थे?

सीतासरन—लीला ने घर से निकाल दिया था, तब आश्रय ढूँढ़ता फिरता था। अब उसने द्वार खोल दिये और खड़ी बुला रही है।

मित्र—अजी, यहाँ वह आनंद कहाँ! घर को लाख सजाओ तो क्या बाग़ हो जायगा!

सीतासरन—भई घर बाग़ नहीं हो सकता, पर स्वर्ग हो सकता है। मुझे इस वक़्त अपनी क्षुद्रता पर जितनी लज्जा आ रही है वह मैं ही जानता हूँ। जिस संतान-शोक में उसने अपने शरीर को घुला डाला, और अपने रूप-लावण्य को मिटा दिया उसी शोक को केवल मेरा एक इशारा पाकर उसने भुला दिया। ऐसा भुला दिया मानों कभी उसे शोक हुआ ही नहीं। मैं जानता हूँ वह बड़े से बड़े कष्ट सह सकती है। मेरी रक्षा उसके लिये आवश्यक है। पर जब अपनी उदासीनता के कारण उसने मेरी दशा बिगड़ती

देखा तो अपना सारा शोक भूल गई। आज मैंने उसे अपने आभूषण पहनकर मुसकिराते देखा तो मेरी आत्मा पुलकित हो उठी। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि वह स्वर्ग की देवी है और केवल मुझ-जैसे दुर्बल प्राणी की रक्षा करने ही के लिए भेजी गई है। मैंने उसे जो कठोर शब्द कहे वे अगर अपनी सारी संपत्ति बेचकर भी मिल सकते, तो लौटा लेता। लीला वास्तव में स्वर्ग की देवी है।

आधार

(१)

सारे गाँव में मथुरा का-सा गठीला जवान न था। कोई बीस बरस की उमर थी। मसें भीग रही थीं। गउएँ चराता, दूध पीता, कसरत करता, कुश्ती लड़ता और सारे दिन बाँसुरी बजाता हार में विचरता था। ब्याह हो गया था पर अभी कोई बाल-बच्चा न था। घर में कई हल की खेती थी, कई छोटे-बड़े भाई थे। वे सब मिल-जुलकर खेती-बारी करते थे। मथुरा पर सारे घर को गर्व था, उसे सबसे अच्छा भोजन मिलता और सबसे कम काम करना पड़ता। जब उसे जाँघिये-लंगोट, नाल या मुग्दर के लिए रुपये-पैसे की जरूरत पड़ती तो तुरत दे दिये जाते थे। सारे घर की यही अभिलाषा थी कि मथुरा पहलवान हो जाय और अखाड़े में अपने से सवाये को पछाड़े। इस लाड़-प्यार से मथुरा जरा टर्रा हो गया था। गायें किसी के खेत में पड़ी हैं और आप अखाड़े में डंड लगा रहा है। कोई उलहना देता तो उसकी त्योरियाँ बदल जातीं। गरजकर कहता, जो मन में आये कर लो, मथुरा तो अखाड़ा छोड़कर गाय हाँकने न जायेंगे; पर उसका डील-डौल देखकर किसी को उससे उलझने की हिम्मत न पड़ती थी। लोग गम खा जाते थे।

गरमियों के दिन थे, ताल-तलैया सूखी पड़ी थीं। जोरों की लू चलने लगी थी। गाँव में कहीं से एक साँड़ आ निकला और गउओं के साथ हो लिया। सारे दिन तो गउओं के साथ रहता, रात को बस्ती में घुस आता और खूँटों से बँधे बैलों को सींगों से मारता। कभी किसी की गीली दीवार सींगों से खोद डालता कभी घूर का कूड़ा सींगों से उड़ाता। कई किसानों ने साग-भाँजी लगा रक्खी थी, सारे दिन सींचते सींचते मरते थे। यह साँड़ रात को उन हरे-भरे खेतों में पहुँच जाता और खेत का खेत तबाह कर देता। लोग उसे डंडों से मारते, गाँव के बाहर भगा आते, लेकिन जरा देर में फिर गायों में पहुँच जाता। किसी की अक्ल काम न करती थी कि इस सङ्कट को कैसे टाला जाय। मथुरा का घर गाँव के बीच में था, इस लिए उसके बैलों को साँड़ से कोई हानि न पहुँचती थी। गाँव में उपद्रव मचा हुआ था और मथुरा को जरा भी चिन्ता न थी।

आखिर जब धैर्य का अन्तिम बंधन टूट गया तो एक दिन लोगों ने जाकर मथुरा को घेरा और बोले—भाई, कहो तो गाँव में रहें, कहो तो निकल जायें। जब खेती ही न बचेगी तो रहकर क्या करेंगे। तुम्हारी गायों के पीछे हमारा सत्यानाश हुआ जाता है, और तुम अपने रंग में मस्त हो। अगर भगवान् ने तुम्हें बल दिया है तो इससे दूसरों की रक्षा करनी चाहिए, यह नहीं कि सब को पीसकर पी जाओ। साँड़ तुम्हारी गायों के कारण आता है और उसे भगाना तुम्हारा काम है लेकिन तुम कानों में तेल डाले बैठे हो, मानो तुमसे कुछ मतलब

मथुरा को उनकी दशा पर दया आ गई। बलवान् मनुष्य प्रायः दयालु होता है। बोला—अच्छा जाओ, हम आज साँड़ को भगा देंगे।

एक आदमी ने कहा—दूर तक भगाना नहीं तो फिर लौट आयेगा!

मथुरा ने लाठी कंधे पर रखते हुए उत्तर दिया—अब लौटकर न आयेगा।

(२)

चलचलाती दोपहरी थी और मथुरा साँड़ को भगाये लिये जाता था। दोनों पसीने में तर थे। साँड़ बार बार गाँव की ओर घूमने की चेष्टा करता लेकिन मथुरा उसका इरादा ताड़कर दूर ही से उसकी राह छेक लेता। साँड़ क्रोध से उन्मत्त होकर कभी कभी पीछे मुड़कर मथुरा पर तोड़ करना चाहता लेकिन उस समय मथुरा सामना बचाकर बगल से तात्रड़-तोड़ इतनी लाठियाँ जमाता कि साँड़ को फिर भागना पड़ता। कभी दोनों अरहर के खेतों में दौड़ते, कभी झाड़ियों में। अरहर की खूँटियों से मथुरा के पाँव लहू-लुहान हो रहे थे, झाड़ियों से धोती फट गई थी; पर उसे इस समय साँड़ का पीछा करने के सिवा और कोई सुधि न थी। गाँव पर गाँव आते थे और निकल जाते थे। मथुरा ने निश्चय कर लिया था कि इसे नदी पार भगाये विना दम न लूँगा। उसका कंठ सूख गया था और आँखें लाल हो गई थीं, रोम रोम से चिनगारियाँ-सी निकल रही थीं, दम उखड़ गया था,लेकिन वह एक क्षण के लिए भी दम न लेता था। दो-ढाई घंटों की दौड़ के बाद जाकर नदी नजर आई।

यहीं हार-जीत का फैसला होनेवाला था, यहीं दोनों खिलाड़ियों को अपने दाँव-पेंच के जौहर दिखाने थे। साँड़ सोचता था, अगर नदी में उतरा तो यह मार ही डालेगा, एक बार जान लड़ाकर लौटने की कोशिश करनी चाहिए। मथुरा सोचता था, अगर यह लौट पड़ा तो इतनी मेहनत व्यर्थ हो जायगी और गाँव के लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे दोनों अपने अपने घात में थे। साँड़ ने बहुत चाहा कि तेज दौड़कर आगे निकल जाऊँ और वहाँ से पीछे को फिरूँ, पर मथुरा ने उसे मुड़ने का मौका न दिया। उसकी जान इस वक्त सुई की नोक पर थी, एक हाथ भी चूका और प्राण गये, ज़रा पैर फिसला और फिर उठना नसीब न होगा। आखिर मनुष्य ने पशु पर विजय पाई और साँड़ को नदी में घुसने के सिवा और कोई उपाय न सूझा। मथुरा भी उसके पीछे नदी में पैठ गया और इतने डंडे लगाये कि उसकी लाठी टूट गई।

(३)

अब मथुरा को जोरों की प्यास लगी। उसने नदी में मुँह लगा दिया और इस तरह हौंक हौंककर पानी पीने लगा मानो सारी नदी पी जायगा उसे अपने जीवन में कभी पानी इतना अच्छा न लगा था और न कभी उसने इतना पानी पिया था मालूम नहीं, पाँच सेर पी गया या दस सेर, लेकिन पानी गरम था प्यास न बुझी, ज़रा देर में फिर नदी में मुँह लगा दिया और इतना पानी पिया कि पेट में साँस लेने की भी जगह न रही। तब गीली धोती कंधे पर डालकर घर की ओर चला।

लेकिन दस ही पाँच पग चला होगा कि पेट में मीठा मीठा दर्द होने लगा। उसने सोचा दौड़कर पानी पीने से ऐसा दर्द अकसर हो जाता है, जरा देर में दूर हो जायगा। लेकिन दर्द बढ़ने लगा और मथुरा का आगे जाना कठिन हो गया। वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया और दर्द से बेचैन होकर जमीन पर लोटने लगा। कभी पेट को दबाता, कभी खड़ा हो जाता, कभी बैठ जाता, पर दर्द बढ़ता ही जाता था। अन्त को उसने ज़ोर ज़ोर से कराहना और रोना शुरू किया, पर वहाँ कौन बैठा था जो उसकी खबर लेता, दूर तक कोई गाँव नहीं, न आदमी, न आदमज़ाद, बेचारा दोपहरी के सन्नाटे में तड़प तड़पकर मर गया। हम कड़े से कड़ा घाव सह सकते हैं लेकिन जरा-सा भी व्यतिक्रम नहीं सह सकते। वही देव का-सा जवान जो कोसों तक साँड़ को भगाता चला आया था, तत्त्वों के विरोध का एक वार भी न सह सका। कौन जानता था कि यह दौड़ उसके लिए मौत की दौड़ होगी? कौन जानता था कि मौत ही साँड़ का रूप धरकर उसे यों नचा रही है? कौन जानता था कि वह जल जिसके बिना उसके प्राण ओठों पर आ रहे थे उसके लिए विष का काम करेगा?

संध्या-समय उसके घरवाले उसे ढूँढ़ते हुए आये। देखा तो वह अनन्त विश्राम में मग्न था!

(४)

एक महीना गुजर गया। गाँववाले अपने काम-धन्धे में लगे। घरवालों ने रो-धोकर सब्र किया। पर अभागिनी विधवा के आँसू कैसे पुँछते। वह हरदम रोती रहती। आँखें चाहे बन्द भी हो

जातीं पर हृदय नित्य रोता रहता था। इस घर में अब कैसे निर्वाह होगा? किस आधार पर जिऊँगी? अपने लिए जीना या तो महात्माओं ही को आता है या लम्पटों ही को। अनूपा को यह कला क्या मालूम? उसके लिए तो जीवन का एक आधार चाहिए था, जिसे वह अपना सर्वस्व समझे, जिसके लिए वह जिये, जिस पर वह घमंड करे। घरवालों को यह गवारा न था कि यह कोई दूसरा घर करे। इसमें बदनामी थी। इसके सिवा ऐसी सुशील, घर के कामों में ऐसी कुशल, लेन-देन के मामले में इतनी चतुर और रंग-रूप की ऐसी सराहनीय स्त्री का किसी दूसरे के घर पड़ जाना ही उन्हें असह्य था। उधर अनूपा के मैकेवाले एक जगह बातचीत पक्की कर रहे थे। जब सब बातें तय हो गईं, तो एक दिन अनूपा का भाई उसे विदा कराने आ पहुँचा।

अब तो घर में खलबली मची। इधर से कहा गया, हम बिदा न करेंगे, भाई ने कहा, हम बिना बिदा कराये मानेंगे नहीं। गाँव के आदमी जमा हो गये, पञ्चायत होने लगी। यह निश्चय हुआ कि अनूपा पर छोड़ दिया जाय। उसका जी चाहे चली जाय, जी चाहे रहे। यहाँवालों को विश्वास था कि अनूपा इतनी जल्द दूसरा घर करने पर राजी न होगी दो-चार बार वह ऐसा कह भी चुकी थी। लेकिन इस वक्त जो पूछा गया तो वह जाने को तैयार थी। आखिर उसकी बिदाई का सामान होने लगा। डोली आ गई। गाँव-भर की स्त्रियाँ उसे देखने आईं। अनूपा उठकर अपनी सास के पैरों पर गिर पड़ी और हाथ जोड़कर बोली—अम्माँ, कहा-सुना

माफ करना। जी में तो था कि इसी घर में पड़ी रहूँ पर भगवान् को मंजूर नहीं है।

यह कहते कहते उसकी जबान बन्द हो गई।

सास करुणा से विह्वल हो उठी। बोली—बेटी, जहाँ जाओ वहाँ सुखी रहो। हमारे भाग्य ही फूट गये नहीं तो क्यों तुम्हें इस घर से जाना पड़ता। भगवान् का दिया और तो सब कुछ है, पर उन्होंने जो नहीं दिया उसमें अपना क्या बस। आज तुम्हारा देवर सयाना होता तो बिगड़ी बात बन जाती। तुम्हारे मन में बैठे तो इसी को अपना समझो, पालो-पोसो, बड़ा हो जायगा तो सगाई कर दूँगी। और तो अपना कोई बस नहीं।

यह कहकर उसने अपने सबसे छोटे लड़के वासुदेव से पूछा—क्यों रे! भौजाई से सगाई करेगा?

वासुदेव की उम्र पाँच साल से अधिक न थी। अब की उसका ब्याह होनेवाला था। बातचीत हो चुकी थी। बोला—तब तो दूसरे के घर न जायगी न?

माँ—नहीं, जब तेरे साथ ब्याह हो जायगा तो क्यों जायगी?

वासुदेव—तब मैं करूँगा।

माँ—अच्छा, उससे पूछ तुझसे ब्याह करेगी?

वासुदेव अनूपा की गोद में जा बैठा और शरमाता हुआ बोला—हमसे ब्याह करेगी?

यह कहकर वह हँसने लगा; लेकिन अनूपा की आँखें डबडबा गईं, वासुदेव को छाती से लगाती हुई बोली—अम्माँ, दिल से कहती हो?

सास—भगवान् जानते हैं !

अनूपा—तो आज से यह मेरे हो गये।

सास—हाँ, सारा गाँव देख रहा है।

अनूपा—तो भैया से कहला भेजो, घर जायें, मैं उनके साथ न जाऊँगी।

अनूपा को जीवन के लिए किसी आधार की ज़रूरत थी। वह आधार मिल गया। सेवा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। सेवा ही उसके जीवन का आधार है।

अनूपा ने वासुदेव को पालना-पोसना शुरू किया। उसे उबटन और तेल लगाती, दूध-रोटी मल मलकर खिलाती। आप तालाब नहाने जाती तो उसे भी नहलाती। खेत में जाती तो उसे भी साथ ले जाती। थोड़े ही दिनों में वह उससे इतना हिल-मिल गया कि एक क्षण के लिए भी उसे न छोड़ता। माँ को भूल गया। कुछ खाने को जी चाहता तो अनूपा से माँगता, खेल में मार खाता तो रोता हुआ अनूपा के पास आता। अनूपा ही उसे सुलाती, अनूपा ही जगाती. बीमार होता तो अनूपा ही गोद में लेकर बदलू वैद्य के घर जाती, वही दवाएँ पिलाती।

गाँव के स्त्री-पुरुष उसकी यह प्रेम-तपस्या देखते और दाँतों उँगली दबाते। पहले बिरले ही किसी को उस पर विश्वास था। लोग समझते थे, साल-दो साल में इसका जी ऊब जायगा और किसी तरफ़ का रास्ता लेगी, इस दुधमुँहे बालक के नाम पर कब तक बैठी रहेगी। लेकिन यह सारी आशंकाएँ निर्मूल निकलीं

अनूपा को किसी ने अपने व्रत से विचलित होते न देखा। जिस हृदय में सेवा का स्रोत बह रहा हो—स्वाधीन सेवा का—उसमें वासनाओं के लिए कहाँ स्थान? वासना का वार निर्मम, आशा-हीन, आधार-हीन, प्राणियों ही पर होता है। चोर की अँधेरे ही में चलती है, उजाले में नहीं।

वासुदेव को भी कसरत का शौक़ था। उसकी शक्ल-सूरत मथुरा से मिलती-जुलती थी, डील-डौल भी वैसी ही थी, उसने फिर अखाड़ा जगाया और उसकी बाँसुरी की तानें फिर खेतों में गूँजने लगीं।

इस भाँति १३ बरस गुजर गये। वासुदेव और अनूपा में सगाई की तैयारी होने लगी।

(६)

लेकिन अब अनूपा वह अनूपा न थी जिसने १४ वर्ष पहले वासुदेव को पतिभाव से देखा था, अब उस भाव का स्थान मातृ-भाव ने ले लिया था। इधर कुछ दिनों से वह एक गहरे सोच में डूबी रहती थी। सगाई के दिन ज्यों ज्यों निकट आते थे उसका दिल बैठा जाता था। अपने जीवन में इतने बड़े परिवर्तन की कल्पना ही से उसका कलेजा दहल उठता था। जिसे बालक की भाँति पाला-पोसा, उसे पति बनाते हुए लज्जा से उसका मुख लाल हो जाता था।

द्वार पर नगाड़ा बज रहा था। बिरादरी के लोग जमा थे। घर में गाना हो रहा था। आज सगाई की तिथि थी।

सहसा अनूपा ने जाकर सास से कहा—अम्माँ, मैं तो लाज के मारे मरी जाती हूँ। सास ने भौचक्की होकर पूछा—क्यों बेटी, क्या है?

अनूपा—मैं सगाई न करूँगी।

सास—कैसी बात करती है बेटी। सारी तैयारी हो गई? लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?

अनूपा—जो चाहें कहें, जिसके नाम पर १४ बरस बैठी रही उसी के नाम पर अब भी बैठी रहूँगी। मैंने समझा था, मरद के बिना औरत से रहा न जाता होगा। मेरी तो भगवान ने इज्जत-आबरू से निबाह दी। जब नई उमर के दिन कट गये तो अब कौन चिन्ता है। वासुदेव की सगाई कोई लड़की खोजकर कर दो। जैसे अब तक उसे पाला उसी तरह अब उसके बाल-बच्चों को पालूँगी।

एक आँच की कसर

सारे नगर में महाशय यशोदानंद का बखान हो रहा था। नगर ही में नहीं, समस्त प्रांत में उनकी कीर्ति गाई जाती थी, समाचारपत्रों में टिप्पणियाँ हो रही थीं, मित्रों के प्रशंसापूर्ण पत्रों का ताँता लगा हुआ था। समाज-सेवा इसको कहते हैं! उन्नत विचार के लोग ऐसा ही करते हैं! महाशयजी ने शिक्षित-समुदाय का मुख उज्ज्वल कर दिया। अब कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि हमारे नेता केवल बात के धनी हैं, काम के धनी नहीं? महाशयजी चाहते तो अपने पुत्र के लिए उन्हें कम से कम २० हजार रुपये दहेज के मिलते, उस पर खुशामद घाते में! मगर लाला साहब ने सिद्धान्त के सामने धन की रत्ती-बराबर परवा न की, और अपने पुत्र का विवाह बिना एक पाई दहेज लिये स्वीकार किया। वाह वाह! हिम्मत हो तो ऐसी हो, सिद्धान्त-प्रेम हो तो ऐसा हो; आदर्श-पालन हो तो ऐसा हो। वाह रे सच्चे वीर, अपनी माता के सच्चे सपूत, तूने वह कर दिखाया जो कभी किसी ने न किया था; हम बड़े गर्व से तेरे सामने मस्तक नवाते हैं!

महाशय यशोदानन्द के दो पुत्र थे। बड़ा लड़का पढ़-लिखकर फ़ाज़िल हो चुका था। उसी का विवाह हो रहा था और जैसा हम देख चुके हैं, बिना कुछ दहेज लिये।

आज वर का तिलक था। शाहजहाँपुर के महाशय स्वा॰ दयाल तिलक लेकर आनेवाले थे। शहर के गण्यमान्य सज्जनों को निमंत्रण दे दिये गये थे वे लोग जमा हो गये थे। महफ़िल सजी हुई थी। एक प्रवीण सितारिया अपना कौशल दिखाकर लोगों को मुग्ध कर रहा था। दावत का सा ान भी तैयार था। मित्रगण यशोदानंद को बधाइयाँ दे रहे थे।

एक महाशय बोले—तुमने तो यार कमाल कर दिया!

दूसरे—कमाल! यह कहिए कि झंडे गाड़ दिये। अब तक जिसे देखा मंच पर व्याख्यान झाड़ते ही देखा। जब काम करने का अवसर आता था तो लोग दुम दबा लेते थे!

तीसरे—कैसे कैसे बहाने गढ़े जाते हैं—साहब हमें तो दहेज से सख़्त नफ़रत है। यह मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है, पर करूँ क्या, बच्चे की अम्मीजान नहीं मानतीं। कोई अपने बाप पर फेंकता है. कोई और किसी ख़ुर्राट पर।

चौथे—अजी, कितने तो ऐसे बेहया हैं जो साफ़ साफ़ कह देते हैं कि हमने लड़के की शिक्षा-दीक्षा में जितना ख़र्च किया है वह हमें मिलना चाहिए। मानो उन्होंने यह रुपये किसी बैंक में जमा किये थे!

पाँचवें—ख़ूब समझ रहा हूँ, आप लोग मुझ पर छींटे उड़ा रहे हैं। इसमें लड़केवालों का ही सारा दोष है या लड़कीवाले का भी कुछ है?

पहले—लड़कीवाले का क्या दोष है, सिवा इसके कि वह लड़की का बाप है?

दूसरे—सारा दोष ईश्वर का है जिसने लड़कियाँ पैदा की। क्यों ?

पाँचवें—मैं यह नहीं कहता। न सारा दोष लड़कीवाले का है, न सारा दोष लड़केवालों का। दोनों ही दोषी हैं। अगर लड़कीवाला कुछ न दे तो उसे यह शिकायत करने का तो कोई अधिकार नहीं है न कि डाल क्यों नहीं लाये, सुन्दर जोड़े क्यों नहीं लाये, बाजे-गाजे और धूमधाम के साथ क्यों नहीं आये ? बताइए !

चौथे—हाँ, आपका यह प्रश्न ग़ौर करने के लायक़ है। मेरी समझ में तो ऐसी दशा में लड़के के पिता से यह शिकायत न होनी चाहिए।

पाँचवें—तो यों कहिए कि दहेज की प्रथा के साथ ही डाल, गहने और जोड़ों की प्रथा भी त्याज्य है। केवल दहेज को मिटाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

यशोदानन्द—यह भी lame excuse[1] है। मैंने दहेज नहीं लिया है लेकिन क्या डाल गहने न ले जाऊँगा।

पहले—महाशय आपकी बात निराली है। आप अपनी गिनती हम दुनियावालों के साथ क्यों करते हैं। आपका स्थान तो देवताओं के साथ है !

दूसरे—२० हज़ार की रक़म छोड़ दी ? क्या बात है।

यशोदानन्द—मेरा तो यह निश्चय कि हमें सदैव principles[2]

१-थोथी दलील। २-सिद्धान्तों।

पर स्थिर रहना चाहिए। principle[1] के सामने money[2] की कोई value[3] नहीं है। दहेज की कुप्रथा पर मैंने खुद कोई व्याख्यान नहीं दिया, शायद कोई नोट तक नहीं लिखा। हाँ, conference[4] में इस प्रस्ताव को second[5] कर चुका हूँ और इस लिए मैं अपने को उस प्रस्ताव से बँधा हुआ पाता हूँ। मैं उसे तोड़ना भी चाहूँ तो आत्मा न तोड़ने देगी। मैं सत्य कहता हूँ यह रुपये ले लूँ तो मुझे इतनी मानसिक वेदना होगी कि शायद मैं इस आघात से बच ही न सकूँ।

पाँचवें—अब की Conference आपको सभापति न बनाये तो उसका घोर अन्याय है।

यशोदानन्द—मैंने अपनी Duty[6] कर दी, उसका recognition[7] हो या न हो, मुझे इसकी परवा नहीं।

इतने में खबर हुई कि महाशय स्वामीदयाल आ पहुँचे। लोग उनका अभिवादन करने को तैयार हुए। उन्हें मसनद पर ला बैठाया और तिलक का संस्कार आरम्भ हो गया। स्वामीदयाल ने एक ढाक के पत्तल में एक नारियल, सुपारी, चावल, पान आदि वस्तुएँ वर के सामने रक्खीं। ब्राह्मणों ने मंत्र पढ़े, हवन हुआ और वर के माथे पर तिलक लगा दिया गया। तुरन्त वर की स्त्रियों ने मंगलाचरण गाना शुरू किया। यहाँ महफ़िल में महाशय यशोदानन्द ने एक चौकी पर खड़े होकर दहेज की कुप्रथा पर व्याख्यान देना

१—सिद्धान्त। २—धन। ३—मूल्य। ४—सभा। ५—अनुमोदन। ६—कर्तव्य। ७—क़दर।

शुरू किया। व्याख्यान पहले से लिखकर तैयार कर लिया गया था। उन्होंने दहेज की ऐतिहासिक व्याख्या की थी। पूर्वकाल में दहेज का नाम भी न था। महाशयो ! कोई जानता ही न था कि दहेज या ठहरौनी किस चिड़िया का नाम है। सत्य मानिए कोई जानता ही न था कि ठहरौनी है क्या चीज, पशु या पक्षी, आसमान में या ज़मीन में, खाने में या पीने में। बादशाही ज़माने में इस प्रथा की बुनियाद पड़ी। हमारे युवक सेनाओं में सम्मिलित होने लगे, यह वीर लोग थे, सेनाओं में जाना गर्व की बात समझते थे। माताएँ अपने दुलारों को अपने हाथ से शस्त्रों से सजाकर रणक्षेत्र में भेजती थीं। इस भाँति युवकों की संख्या कम होने लगी और लड़कों का मोल-तोल शुरू हुआ। आज यह नौबत आ गई है कि मेरी इस तुच्छ, महातुच्छ सेवा पर पत्रों में टिप्पणियाँ हो रही हैं मानो मैंने कोई असाधारण काम किया है। मैं कहता हूँ, अगर आप संसार में जीवित रहना चाहते हैं तो इस प्रथा का तुरन्त अन्त कीजिए !

एक महाशय ने शंका की—क्या इसका अंत किये विना हम सब मर जायेंगे ?

यशोदानन्द—अगर ऐसा होता तो क्या पूछना था, लोगों को दण्ड मिल जाता और वास्तव में ऐसा ही होना चाहिए। यह ईश्वर का अत्याचार है कि ऐसे लोभी, धन पर गिरनेवाले, बरदा-फ़रोश, अपनी संतान का विक्रय करनेवाले नराधम जीवित हैं और सुखी हैं। समाज उनका तिरस्कार नहीं करता। मगर वह सब बरदा-फ़रोश हैं.....इत्यादि।

व्याख्यान बहुत लम्बा और हास्य से भरा हुआ था। लोगों ने खूब वाह वाह की। अपना वक्तव्य समाप्त करने के बाद उन्होंने अपने छोटे लड़के परमानन्द को जिसकी अवस्था कोई ७ वर्ष की थी, मंच पर खड़ा किया। उसे उन्होंने एक छोटा-सा व्याख्यान लिखकर दे रक्खा था। दिखाना चाहते थे कि इस कुल के छोटे बालक भी कितने कुशाग्रबुद्धि हैं। सभा-समाजों में बालकों से व्याख्यान दिलाने की प्रथा है ही, किसी को कुतूहल न हुआ। बालक बड़ा सुन्दर, होनहार, हँसमुख था। मुसकिराता हुआ मंच पर आया और जेब में से एक काग़ज़ निकालकर बड़े गर्व के साथ उच्च स्वर से पढ़ने लगा—

प्रिय बन्धुवर,

नमस्कार

आपके पत्र से विदित होता है कि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है। मैं ईश्वर को साक्षी करके निवेदन करता हूँ कि निर्दिष्ट धन आपकी सेवा में इतनी गुप्त रीति से पहुँचेगा कि किसी को लेशमात्र भी संदेह न होगा। हाँ केवल एक जिज्ञासा करने की धृष्टता करता हूँ। इस व्यापार को गुप्त रखने से आपको जो सम्मान और प्रतिष्ठा-लाभ होगी, और मेरे निकटवर्ती बन्धुजनों में मेरी जो निन्दा की जायगी उसके उपलक्ष्य में मेरे साथ क्या रिआयत होगी? मेरा विनीत अनुरोध है, कि २५ में से ५ निकालकर मेरे साथ न्याय किया जाय..........।

महाशय यशोदानन्द घर में मेहमानों के लिए भोजन परसने का

"२५ में से ५ निकालकर मेरे साथ न्याय कीजिए।" चेहरा फ़क हो गया, झपटकर लड़के के पास गये, काग़ज उसके हाथ से छीन लिया और बोले— नालायक़, यह क्या पढ़ रहा है, यह तो किसी मुवक्किल का ख़त है जो उसने अपने मुक़दमे के बारे में लिखा था। यह तू कहाँ से उठा लाया, शैतान, जा वह काग़ज़ ला, जो तुझे लिखकर दिया गया था।

एक महाशय—पढ़ने दीजिए, इस तहरीर में जो लुत्फ़ है वह किसी दूसरी तक़रीर में न होगा।

दूसरे—जादू वह जो सिर पर चढ़के बोले!

तीसरे—अब जलसा बरख़ास्त कीजिए। मैं तो चला।

चौथे—यहाँ भी चलन्तू हुए!

यशोदानन्द—बैठिए बैठिए, पत्तल लगाये जा रहे हैं।

पहले—बेटा परमानन्द, ज़रा यहाँ तो आना, तुमने यह काग़ज़ कहाँ पाया?

परमानन्द—बाबूजी ही ने तो लिखकर अपने मेज़ के अन्दर रख दिया था। मुझसे कहा था कि इसे पढ़ना। अब नाहक़ मुझसे ख़फ़ा हो रहे हैं।

यशोदानन्द—वह यह काग़ज़ था सुअर? मैंने तो मेज़ के ऊपर ही रख दिया था, तूने ड्राअर में से क्यों यह काग़ज़ निकाला?

परमानन्द—मुझे मेज़ पर नहीं मिला।

यशोदानन्द—तो मुझसे क्यों नहीं कहा, ड्राअर क्यों खोला, देखो आज ऐसी ख़बर लेता हूँ कि तुम भी याद करोगे।

पहले—यह आकाशवाणी है।

दूसरे—इसी को लीडरी कहते हैं कि अपना उल्लू भी सीधा करो और नेकनाम भी बनो।

तीसरे—शरम आनी चाहिए। यश त्याग से मिलता है, धोखे-धड़ी से नहीं।

चौथे—मिल तो गया था पर एक आँच की कसर रह गई।

पाँचवें—ईश्वर पाखंडियों को यों ही दण्ड देता है।

यह कहते हुए लोग उठ खड़े हुए। यशोदानन्द समझ गये कि भाँडा फूट गया, अब रंग न जमेगा, बार बार परमानन्द को कुपित नेत्रों से देखते थे और डंडा तोलकर रह जाते थे। इस शैतान ने आज जीती-जिताई बाज़ी खो दी, मुँह में कालिख लग गई, सिर नीचा हो गया। गोली मार देने का काम किया है।

उधर रास्ते में मित्र-वर्ग यों टिप्पणियाँ करते जा रहे थे—

एक—ईश्वर ने मुँह में कैसी कालिमा लगाई कि हयादार होगा तो अब सूरत न दिखायेगा।

दूसरा—ऐसे ऐसे धनी, मानी, विद्वान्, लोग ऐसे पतित हो सकते हैं मुझे तो यही आश्चर्य है। लेना है तो खुले ख़ज़ाने लो, कौन तुम्हारा हाथ पकड़ता है; यह क्या कि माल भी चुपके चुपके उड़ाओ और यश भी कमाओ ?

तीसरा—मक्कार का मुँह काला!

चौथा—यशोदानन्द पर दया आ रही है। बेचारे ने इतनी धूर्तता की उस पर भी क़लई खुल ही गई। बस एक आँच की कसर रह गई!

माता का हृदय

(१)

माधवी की आँखों में सारा संसार अँधेरा हो रहा था। कोई अपना मददगार न दिखाई देता था। कहीं आशा की झलक न थी। उस निर्जन घर में वह अकेली पड़ी रोती थी और कोई आँसू पोछनेवाला न था। उसके पति को मरे हुए २२ वर्ष हो गये थे। घर में कोई संपत्ति न थी। उसने न-जाने किन किन तकलीफों से अपने बच्चे को पाल-पोसकर बड़ा किया था। वही जवान बेटा आज उसकी गोद से छीन लिया गया था, और छीननेवाले कौन थे? अगर मृत्यु ने छीना होता तो वह सब्र कर लेती। मौत से किसी को द्वेष नहीं होता। मगर स्वार्थियों के हाथों यह अत्याचार असह्य हो रहा था। इस घोर संताप की दशा में उसका जी रह रहकर इतना विकल हो जाता कि इसी समय चलूँ और उस अत्याचारी से इसका बदला लूँ जिसने उस पर यह निष्ठुर आघात किया है। मारूँ या मर जाऊँ। दोनों ही में सन्तोष हो जायगा। कितना सुन्दर, कितना होनहार बालक था! यही उसके पति की निशानी, उसके जीवन का आधार, उसकी उम्र-भर की कमाई थी! वही लड़का इस वक्त जेल में पड़ा न-जाने क्या क्या तकलीफें झेल

रहा होगा ! और उसका अपराध क्या था ? कुछ नहीं। सारा मुहल्ला उस पर जान देता था। विद्यालय के अध्यापक उस पर जान देते थे। अपने-बेगाने सभी तो उसे प्यार करते थे। कभी उसकी कोई शिकायत सुनने ही में नहीं आई। ऐसे बालक की माता होने पर अन्य माताएँ उसे बधाई देती थीं। कैसा सज्जन, कैसा उदार, कैसा परमार्थी, खुद भूखों सो रहे मगर क्या मजाल कि द्वार पर आनेवाले अतिथि को रूखा जवाब दे। ऐसा बालक क्या इस योग्य था कि जेल में जाता ! उसका अपराध यही था। वह कभी कभी सुननेवालों को अपने दुखी भाइयों का दुखड़ा सुनाया करता था, अत्याचार से पीड़ित प्राणियों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता था। क्या यही उसका अपराध था ? दूसरों की सेवा करना भी अपराध है ? किसी अतिथि को आश्रय देना भी अपराध है ?

इस युवक का नाम आत्मानन्द था। दुर्भाग्यवश उसमें वे सभी सद्गुण थे जो जेल का द्वार खोल देते हैं। वह निर्भीक था, स्पष्टवादी था, साहसी था, स्वदेश-प्रेमी था, निस्स्वार्थ था, कर्तव्य-परायण था। जेल जाने के लिए इन्हीं गुणों की जरूरत है। स्वाधीन प्राणियों के लिए ये गुण स्वर्ग का द्वार खोल देते हैं, पराधीनों के लिए नरक के ! आत्मानन्द के सेवा-कार्य ने, उसकी वक्तृताओं ने और उसके राजनीतिक लेखों ने उसे सरकारी कर्मचारियों की नजरों में चढ़ा दिया था। सारा पुलीस-विभाग नीचे से ऊपर तक, उससे सतर्क रहता था, सबकी निगाहें उस पर लगी रहती थीं। आखिर जिले में एक भयङ्कर डाके ने उन्हें इच्छित

अवसर प्रदान कर दिया। आत्मानन्द के घर की तलाशी हुई, कुछ पत्र और लेख मिले जिन्हें पुलीस ने डाके का बीजक सिद्ध किया। लगभग २० युवकों की एक टोली फाँस ली गई। आत्मानन्द इनका मुखिया ठहराया गया। शहादतें तैयार हुईं। इस बेकारी और गिरानी के ज़माने में आत्मा से ज्यादा सस्ती और कौन वस्तु हो सकती है! बेचने को और किसी के पास रह ही क्या गया है। नाममात्र का प्रलोभन देकर अच्छी से अच्छी शहादतें मिल सकती हैं, और पुलीस के हाथों में पड़कर तो निकृष्ट से निकृष्ट गवाहियाँ भी देव-वाणी का महत्त्व प्राप्त कर लेती हैं। शहादतें मिल गईं, महीने-भर तक मुक़द्मा चला, मुक़द्मा क्या चला एक स्वाँग चलता रहा, और सारे अभियुक्तों को सज़ाएँ दे दी गईं। आत्मानन्द को सबसे कठोर दण्ड मिला। ८ वर्ष का कठिन कारावास! माधवी रोज़ कचहरी जाती; एक कोने में बैठी सारी काररवाई देखा करती। मानवी चरित्र कितना दुर्बल, कितना निर्दय, कितना नीच है, इसका उसे तब तक अनुमान भी न हुआ था। जब आत्मानन्द को सज़ा सुना दी गई और वह माता को प्रणाम करके सिपाहियों के साथ चला तो माधवी मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। दो-चार दयालु सज्जनों ने उसे एक ताँगे पर बैठाकर घर तक पहुँचाया। जब से वह होश में आई है उसके हृदय में शूल-सा उठ रहा है। किसी तरह धैर्य नहीं होता। उस घोर आत्म-वेदना की दशा में अब उसे अपने जीवन का केवल एक लक्ष्य दिखाई देता है, और वह इस अत्याचार का बदला है।

अब तक पुत्र उसके जीवन का आधार था। अब शत्रुओं से बदला लेना ही उसके जीवन का आधार होगा। जीवन में अब उसके लिए कोई आशा न थी। इस अत्याचार का बदला लेकर वह अपना जन्म सफल समझेगी। इस अभागे नर-पिशाच बागची ने जिस तरह उसे रक्त के आँसू रुलाये हैं उसी भाँति वह भी उसे रुलायेगी। नारी-हृदय कोमल है, लेकिन केवल अनुकूल दशा में। जिस दशा में पुरुष दूसरों को दबाता है, स्त्री शील और विनय की देवी हो जाती है। लेकिन जिसके हाथों अपना सर्वनाश हो गया हो उसके प्रति स्त्री को पुरुष से कम घृणा और क्रोध नहीं होता। अन्तर इतना ही है कि पुरुष शस्त्रों से काम लेता है, स्त्री कौशल से।

रात भीगती जाती थी, और माधवी उठने का नाम न लेती थी। उसका दुख प्रतिकार के आवेश में विलीन होता जाता था। यहाँ तक कि इसके सिवा उसे और किसी बात की याद ही न रही। उसने सोचा, कैसे यह काम होगा? कभी घर से नहीं निकली! वैधव्य के २२ साल इसी घर में कट गये। लेकिन अब निकलूँगी। जबरदस्ती निकलूँगी, भिखारिन बनूँगी, टहलनी बनूँगी, झूठ बोलूँगी, सब कुकर्म करूँगी। सत्कर्म के लिए संसार में स्थान नहीं। ईश्वर ने निराश होकर कदाचित् इसकी ओर से मुँह फेर लिया है। जभी तो यहाँ ऐसे ऐसे अत्याचार होते हैं, और पापियों को दण्ड नहीं मिलता! अब इन्हीं हाथों से उसे दण्ड दूँगी।

(२)

संध्या का समय था। लखनऊ के एक सजे हुए बँगले में मित्रों की महफ़िल जमी हुई थी। गाना-बजाना हो रहा था। एक तरफ़ आतशबाजियाँ रक्खी हुई थीं। दूसरे कमरे में मेज़ों पर खाना चुना जा रहा था। चारों तरफ़ पुलीस के कर्मचारी नज़र आते थे। यह पुलीस के सुपरिंटेंडेंट मिस्टर बागची का बँगला है। कई दिन हुए उन्होंने एक मारके का मुक़द्मा जीता था। अफ़सरों ने ख़ुश होकर उनकी तरक़्क़ी कर दी थी और उसी की ख़ुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा था। यहाँ आये दिन ऐसे उत्सव होते रहते थे। मुफ़्त के गवैये मिल जाते थे, मुफ़्त की आतशबाज़ी; फल और मेवे और मिठाइयाँ आधे दामों पर बाज़ार से आ जाती थीं और चट दावत हो जाती थी। दूसरों के जहाँ सौ लगते, वहाँ इनका दस से काम चल जाता था। दौड़-धूप करने को सिपाहियों की फ़ौज थी ही! और यह मारके का मुक़द्मा क्या था? वही जिसमें निरपराध युवकों को बनावटी शहादतों से जेल में ठूँस दिया गया था।

गाना समाप्त होने पर लोग भोजन करने बैठे। बेगार के मज़दूर और पल्लेदार जो बाज़ार से दावत और सजावट के सामान लाये थे, रोते या दिल में गालियाँ देते चले गये थे, पर एक बुढ़िया अभी तक द्वार पर बैठी हुई थी। अन्य मजूरों की तरह वह भुनभुनाकर काम न करती थी। हुक्म पाते ही ख़ुश-दिल मजूर की तरह दौड़ दौड़कर हुक्म बजा लाती थी। यह माधवी थी, जो इस

समय मजूरनी का वेष धारण करके अपना घातक संकल्प पूरा करने आई थी।

मेहमान चले गये। महफ़िल उठ गई। दावत का सामान समेट दिया गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया, लेकिन माधवी अभी तक यहीं बैठी थी।

सहसा मिस्टर बागची ने पूछा—बुड्ढी, तू यहाँ क्यों बैठी है? तुझे कुछ खाने को मिल गया?

माधवी—हाँ हुजूर, मिल गया।

बागची—तो जाती क्यों नहीं?

माधवी—कहाँ जाऊँ सरकार, मेरा कोई घर-द्वार थोड़े ही है? हुकुम हो तो यहीं पड़ रहूँ। पाव-भर आटे की परवस्ती हो जाय हुजूर।

बागची—नौकरी करेगी?

माधवी—क्यों न करूँगी सरकार, यही तो चाहती हूँ।

बागची—लड़का खेला सकती है?

माधवी—हाँ हुजूर, यह मेरे मन का काम है।

बागची—अच्छी बात है। तू आज ही से रह। जा घर में देख जो काम बतायें वह कर।

(३)

एक महीना गुज़र गया। माधवी इतना तन-मन से काम करती है कि सारा घर उससे खुश है। बहूजी का मिज़ाज बहुत ही चिड़चिड़ा है। वह दिनभर खाट पर पड़ी रहती हैं और बात

बात पर नौकरों पर झल्लाया करती हैं ; लेकिन माधवी उनकी घुड़कियों को भी सहर्ष सह लेती है। अब तक मुश्किल से कोई दाई एक सप्ताह से अधिक ठहरी थी। माधवी ही का कलेजा है कि जली-कटी सुनकर भी मुख पर मैल नहीं आने देती।

मिस्टर बागची के कई लड़के हो चुके थे, पर यही सबसे छोटा बच्चा बच रहा था। बच्चे पैदा तो हृष्ट-पुष्ट होते, किन्तु जन्म लेते ही उन्हें एक न एक रोग लग जाता था, और कोई दो-चार महीने, कोई साल-भर जीकर चल देते थे। माँ-बाप दोनों इस शिशु पर प्राण देते थे। उसे ज़रा जुकाम भी हो जाता तो दोनों विकल हो जाते। स्त्री-पुरुष दोनों शिक्षित थे पर बच्चे की रक्षा के लिए टोना-टोटका, दुआ-तावीज़, जंतर-मंतर, एक से भी उन्हें इनकार न था।

माधवी से यह बालक इतना हिल गया कि एक क्षण के लिए भी उसकी गोद से न उतरता। वह कहीं एक क्षण के लिए चली जाती तो रो रोकर दुनिया सिर पर उठा लेता। वह सुलाती तो सोता, वह दूध पिलाती तो पीता, वह खेलाती तो खेलता, उसी को वह अपनी माता समझता। माधवी के सिवा उसके लिए संसार में और कोई अपना न था। बाप को तो वह दिनभर में केवल दो-चार बार देखता और समझता यह कोई परदेशी आदमी है। माँ आलस्य और कमज़ोरी के मारे उसे गोद में लेकर टहल न सकती थी। उसे वह अपनी रक्षा का भार सँभालने के योग्य न समझता था; और नौकर-चाकर उसे गोद में लेते तो इतनी

बेदर्दी से कि उसके कोमल अंगों में पीड़ा होने लगती थी; कोई उसे ऊपर उछाल देता था, यहाँ तक कि अबोध शिशु का कलेजा मुँह को आ जाता था। उन सबों से वह डरता था। केवल माधवी थी जो उसके स्वभाव को समझती थी। वह जानती थी कि कब क्या करने से बालक प्रसन्न होगा, इसी लिए बालक को भी उससे प्रेम था।

माधवी ने समझा था यहाँ कंचन बरसता होगा, लेकिन उसे यह देखकर कितना विस्मय हुआ कि बड़ी मुश्किल से महीने का खरच पूरा पड़ता है। नौकरों से एक एक पैसा का हिसाब लिया जाता था और बहुधा आवश्यक वस्तुएँ भी टाल दी जाती थीं। एक दिन माधवी ने कहा—बच्चे के लिए कोई सेजगाड़ी क्यों नहीं मँगवा देतीं। गोद में उसकी बाढ़ मारी जाती होगी।

मिसेज़ बागची ने कुंठित होकर कहा—कहाँ से मँगवा दूँ? कम से कम ५०-६० रुपये में आयेगी। इतने रुपये कहाँ हैं?

माधवी—मालकिन, आप भी ऐसा कहती हैं!

मिसेज़ बागची—झूठ नहीं कहती। बाबूजी की पहली स्त्री से पाँच लड़कियाँ और हैं। सब इस समय इलाहाबाद के एक स्कूल में पढ़ रही हैं। बड़ी की उम्र १५-१६ वर्ष से कम न होगी। आधा वेतन तो उधर ही चला जाता है। फिर उनकी शादी की भी तो फ़िक्र है। पाँचों के विवाह में कम से कम २५ हज़ार लगेंगे। इतने रुपये कहाँ से आयेंगे। मैं तो चिंता के मारे मरी जाती हूँ। मुझे कोई दूसरी बीमारी नहीं है, केवल यही चिंता का रोग है।

माधवी—घूस भी तो मिलती है।

मिसेज़ बागची—बूढ़ा, ऐसी कमाई में बरकत नहीं होती। यही क्यों, सच पूछो तो इसी घूस ने हमारी यह दुर्गति कर रक्खी है। क्या जाने औरों को कैसे हज़म होती है। यहाँ तो जब ऐसे रुपये आते हैं तो कोई न कोई नुक़सान भी अवश्य हो जाता है। एक आता है तो दो लेकर जाता है। बार बार मना करती हूँ, हराम को कौड़ी घर में न लाया करो, लेकिन मेरी कौन सुनता है।

बात यह थी कि माधवी को बालक से स्नेह होता जाता था। उसके अमंगल की कल्पना भी वह न कर सकती थी। वह अब उसी की नींद सोती और उसी की नींद जागती थी। अपने सर्व-नाश की बात याद करके एक क्षण के लिए उसे बागची पर क्रोध तो हो आता था और घाव फिर हरा हो जाता था, पर मन पर कुत्सित भावों का आधिपत्य न था। घाव भर रहा था, केवल ठेस लगने से दर्द हो जाता था। उसमें स्वयं टीस या जलन न थी। इस परिवार पर अब उसे दया आती थी। सोचती, बेचारे यह छीन-झपट न करें तो कैसे गुज़र हो! लड़कियों का विवाह कहाँ से करेंगे। स्त्री को जब देखो बीमार ही रहती है। उस पर बाबूजी को एक बोतल शराब भी रोज़ चाहिए। यह लोग तो स्वयं अभागे हैं। जिसके घर में ५-५ क्वाँरी कन्याएँ हों, बालक हो होकर मर जाते हों, घरनी सदा बीमार रहती हो, स्वामी शराब का लती हो, उस पर तो यों ही ईश्वर का कोप है। इनसे तो मैं अभागिनी ही अच्छी!

(४)

दुर्बल बालकों के लिए बरसात बुरी बला है। कभी खाँसी है, कभी ज्वर, कभी दस्त—जब हवा में ही शीत भरी हो तो कोई कहाँ तक बचाये। माधवी एक दिन अपने घर चली गई थी। बच्चा रोने लगा तो माँ ने एक नौकर को दिया, इसे बाहर से बहला ला। नौकर ने बाहर ले जाकर हरी हरी घास पर बैठा दिया। पानी बरस-कर निकल गया था। भूमि गीली हो रही थी। कहीं कहीं पानी भी जमा हो गया था। बालक को पानी में छपके लगाने से ज्यादा प्यारा और कौन खेल हो सकता है। खूब प्रेम से उमक उमककर पानी में लोटने लगा। नौकर बैठा और आदमियों के साथ गपशप करता रहा। इस तरह घण्टों गुज़र गये। बच्चे ने खूब सरदी खाई। घर आया तो उसकी नाक बह रही थी। रात को माधवी ने आकर देखा तो बच्चा खाँस रहा था। आधी रात के क़रीब उसके गले से खुरखुर की आवाज़ निकलने लगी। माधवी का कलेजा सन से हो गया। स्वामिनी को जगाकर बोली—देखो तो बच्चे को क्या हो गया है। क्या सर्दी-वर्दी तो नहीं लग गई। हाँ सर्दी ही तो मालूम होती है।

स्वामिनी हकबकाकर उठ बैठी और बालक की खुरखुराहट सुनी तो पाँव-तले से ज़मीन निकल गई। यह भयंकर आवाज़ उसने कई बार सुनी थी और उसे खूब पहचानती थी। व्यग्र होकर बोली—ज़रा आग जलाओ। थोड़ासा चोकर लाकर एक पोटली बनाओ, सेंकने से लाभ होता है। इन नौकरों से तंग आ गई। आज कहार ज़रा देर के लिए बाहर ले गया था उसी ने सर्दी में छोड़ दिया होगा।

सारी रात दोनों बालक को सेकती रहीं। किसी तरह सवेरा हुआ। मिस्टर बागची को खबर मिली तो सीधे डाक्टर के यहाँ दौड़े। खैरियत इतनी थी कि जल्द एहतियात की गई थी। तीन दिन में बच्चा अच्छा हो गया। लेकिन इतना दुर्बल हो गया था कि उसे देखकर डर लगता था। सच पूछो तो माधवी की तपस्या ने बालक को बचाया। माता सोती, पिता सो जाता, किन्तु माधवी की आँखों में नींद न थी। खाना-पीना तक भूल गई। देवताओं की मनौतियाँ करती थी, बच्चे की बलाएँ लेती थी, बिलकुल पागल हो गई थी। यह वही माधवी है जो अपने सर्वनाश का बदला लेने आई थी। अपकार की जगह उपकार कर रही थी। विष पिलाने आई थी, सुधा पिला रही थी। मनुष्य में देवता कितना प्रबल है!

प्रातःकाल का समय था। मिस्टर बागची शिशु के झूले के पास बैठे हुए थे। स्त्री के सिर में पीड़ा हो रही थी। वह चारपाई पर लेटी हुई थी, और माधवी समीप बैठी बच्चे के लिए दूध गरम कर रही थी। सहसा बागची ने कहा—बूढ़ा, हम जब तक जियेंगे तुम्हारा यश गायेंगे। तुमने बच्चे को जिला लिया।

स्त्री—यह देवी बनकर हमारा कष्ट निवारण करने के लिए आ गई। यह न होती तो न-जाने क्या हो जाता। बूढ़ा, तुमसे मेरी एक विनती है। यों तो मरना-जीना प्रारब्ध के हाथ है लेकिन अपना अपना पौरा भी बड़ी चीज़ है। मैं अभागिनी हूँ। अब की तुम्हारे ही पुण्य-प्रताप से बच्चा सँभल गया। मुझे डर लग रहा है कि ईश्वर इसे हमारे हाथ से छीन न लें। सच कहती हूँ बूढ़ा,

मुझे इसको गोद में लेते डर लगता है। इसे तुम आज से अपना बच्चा समझो। तुम्हारा होकर शायद बच जाय, हम तो अभागे हैं। हमारा होकर इस पर नित्य कोई-न-कोई संकट आता रहेगा। आज से तुम इसकी माता हो जाओ। तुम इसे अपने घर ले जाओ। जहाँ चाहे ले जाओ। तुम्हारी गोद में देकर मुझे फिर कोई चिंता न रहेगी। वास्तव में तुम्हीं इसकी माता हो। मैं तो राक्षसी हूँ।

माधवी—बहूजी, भगवान् सब कुशल करेंगे, क्यों जी इतना छोटा करती हो?

मिस्टरबागर्चा—नहीं नहीं बूढ़ी माता, इसमें कोई हरज नहीं है। मस्तिष्क से तो इन बातों को ढकोसला ही समझता हूँ, लेकिन हृदय से इन्हें दूर नहीं कर सकता। मुझे स्वयं मेरी माताजी ने एक धोबिन के हाथ बेच दिया था। मेरे तीन भाई मर चुके थे। मैं जो बच गया तो माँ-बाप ने समझा, बेचने ही से इसकी जान बच गई। तुम इस शिशु को पालो-पोसो। इसे अपना पुत्र समझो। खर्च हम बराबर देते रहेंगे। इसकी कोई चिन्ता मत करना। कभी कभी जब हमारा जी चाहेगा, आकर देख लिया करेंगे। हमें विश्वास है कि तुम इसकी रक्षा हम लोगों से कहीं अच्छी तरह कर सकती हो। मैं कुकर्मी हूँ। जिस पेशे में हूँ, उसमें कुकर्म किये बग़ैर काम नहीं चल सकता। झूठी शहादतें बनानी ही पड़ती हैं, निरपराधों को फँसाना ही पड़ता है। आत्मा इतनी दुर्बल हो गई है कि प्रलोभन में पड़ ही जाती है। जानता हूँ कि बुराई का फल बुरा ही होता है, पर परिस्थिति से मजबूर हूँ। अगर ऐसा न करूँ तो आज नालायक़ बनाकर

निकाल दिया जाऊँ। अँगरेज हजारों भूलें करें, कोई नहीं पूछता। हिन्दुस्तानी एक भूल भी कर बैठे तो सारे अफ़सर उसके सिर हो जाते हैं। हिन्दुस्तानियों को तो कोई बड़ा पद न मिले वही अच्छा। पद पाकर तो उनकी आत्मा का पतन हो जाता है। उनको अपनी हिन्दुस्तानियत का दोष मिटाने के लिए कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ती हैं जिनका अँगरेज़ के दिल में कभी ख़याल ही नहीं पैदा हो सकता। तो बोलो स्वीकार करती हो?

माधवी गद्‌गद होकर बोली—बाबूजी, आपकी यह इच्छा है तो मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा आपकी सेवा कर दूँगी। भगवान् बालक को अमर करें, मेरी तो उनसे यही विनती है।

माधवी को ऐसा मालूम हो रहा था कि स्वर्ग के द्वार सामने खुले हैं और स्वर्ग की देवियाँ उसे अञ्चल फैला फैलाकर आशीर्वाद दे रही हैं, मानो उसके अन्तस्थल में प्रकाश की लहरें-सी उठ रही हैं। इस स्नेहमय सेवा में कितनी शान्ति थी!

बालक अभी तक चादर ओढ़े सो रहा था। माधवी ने दूध गरम हो जाने पर उसे झूले पर से उठाया, तो चिल्ला पड़ी। बालक की देह ठंडी हो गई थी और मुख पर वह पीलापन आ गया था जिसे देखकर कलेजा हिल जाता है, कंठ से आह निकल आती है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं। जिसने उसे एक बार देखा है फिर कभी नहीं भूल सकता। माधवी ने शिशु को गोद में चिमटा लिया, हालाँकि नीचे उतार देना चाहिए था।

कुहराम मच गया। माँ बच्चे को गले से लगाये रोती थी

पर उसे ज़मीन पर न सुलाती थी। क्या बातें हो रही थीं और क्या हो गया। मौत को धोखा देने में आनन्द आता है। वह उस वक्त कभी नहीं आती जब लोग उसकी राह देखते होते हैं। रोगी जब सँभल जाता है, जब वह पथ्य लेने लगता है, उठने-बैठने लगता है, घर पर खुशियाँ मनाने लगता है, सबको विश्वास हो जाता है कि संकट टल गया, उस वक्त घात में बैठी हुई मौत सिर पर आ जाती है। यही उसकी निठुर लीला है!

आशाओं के बाग लगाने में हम कितने कुशल हैं। यहाँ हम रक्त के बीज बोकर सुधा के फल खाते हैं। अग्नि से पौदों को सींचकर शीतल छाँह में बैठते हैं! हा मन्द बुद्धि!

दिनभर मातम होता रहा, बाप रोता था, माँ तड़पती थी और माधवी बारी बारी से दोनों को समझाती थी। यदि अपने प्राण देकर वह बालक को जिला सकती तो इस समय अपना धन्य भाग्य समझती। वह अहित का संकल्प करके यहाँ आई थी और आज जब उसकी मनोकामना पूरी हो गई और उसे खुशी से फूला न समाना चाहिए था, उसे उससे कहीं घोर पीड़ा हो रही थी जो अपने पुत्र की जेल-यात्रा से हुई थी। रुलाने आई थी और खुद रोती जा रही थी। माता का हृदय दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें से दया की ही सुगंध निकलती है। पीसो तो दया का ही रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएँ भी उस स्वच्छ और निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं!

परीक्षा

(१)

नादिरशाह की सेना ने दिल्ली में क़त्ल-आम कर रक्खा है। गलियों में खून की नदियाँ बह रही हैं। चारों तरफ़ हाहाकार मचा हुआ है। बाज़ार बन्द है। दिल्ली के लोग घरों के द्वार बन्द किये जान की खैर मना रहे हैं। किसी की जान सलामत नहीं है। कहीं घरों में आग लगी हुई है, कहीं बाज़ार लुट रहा है; कोई किसी की फ़रियाद नहीं सुनता। रईसों की बेगमें महलों से निकाली जा रही हैं और उनकी बेहुरमती की जाती है। ईरानी सिपाहियों की रक्त-पिपासा किसी तरह नहीं बुझती। मानव-हृदय की क्रूरता, कठोरता और पैशाचिकता अपना विकरालतम रूप धारण किये हुए है। इसी समय नादिरशाह ने बादशाही महल में प्रवेश किया।

दिल्ली उन दिनों भोग-विलास का केन्द्र बनी हुई थी। सजावट और तकल्लुफ़ के सामानों से रईसों के भवन अटे रहते थे। स्त्रियों को बनाव-सिंगार के सिवा कोई काम न था। पुरुषों को सुख-भोग के सिवा और कोई चिन्ता न थी। राजनीति का स्थान शेर-शायरी ने ले लिया था। समस्त प्रान्तों से धन खिंच खिंचकर

आता था और पानी की भाँति बहाया जाता था । वेश्याओं की चाँदी थी ; कहीं तीतरों के जोड़ होते थे, कहीं बटेरों और बुल-बुलों की पालियाँ ठनती थीं । सारा नगर विलास-निद्रा में मग्न था । नादिरशाह शाही-महल में पहुँचा तो वहाँ का सामान देखकर उसकी आँखें खुल गईं । उसका जन्म दरिद्र-घर में हुआ था । उसका समस्त जीवन रणभूमि में ही कटा था । भोग-विलास का उसे चसका न लगा था । कहाँ रणक्षेत्र के कष्ट और कहाँ यह सुख-साम्राज्य ! जिधर आँख उठती थी, उधर से हटने का नाम न लेती थी ।

संध्या हो गई थी । नादिरशाह अपने सरदारों के साथ महल की सैर करता और अपने पसन्द की चीज़ों को बटोरता हुआ दीवाने-ख़ास में आकर कारचोबी मसनद पर बैठ गया, सरदारों को वहाँ से चले जाने का हुक्म दे दिया, अपने सब हथियार खोल-कर रख दिये और महल के दारोग़ा को बुलाकर हुक्म दिया—मैं शाही बेगमों का नाच देखना चाहता हूँ । तुम इसी वक्त़ उनको सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजाकर मेरे सामने लाओ । ख़बरदार ज़रा भी देर न हो । मैं कोई उज्र या इनकार नहीं सुन सकता !

(२)

दारोग़ा ने यह नादिरशाही हुक्म सुना तो होश उड़ गये । वह महिलाएँ जिन पर कभी सूर्य की दृष्टि भी नहीं पड़ी कैसे इस मज-लिस में आयेंगी ! नाचने का तो कहना ही क्या ! शाही बेगमों का इतना अपमान कभी न हुआ था । हा नरपिशाच ! दिल्ली को ख़ून

से रंगकर भी तेरा चित्त शान्त नहीं हुआ। मगर नादिरशाह के सम्मुख एक शब्द भी ज़बान से निकालना अग्नि के मुख में कूदना था। सिर झुकाकर आदाब बजा लाया और आकर रनिवास में सब बेगमों को नादिरशाही हुक्म सुना दिया; उसके साथ ही यह इत्तला भी दे दी कि जरा भी ताम्मूल न हो, नादिरशाह कोई उज्र या हीला न सुनेगा। शाही खानदान पर इतनी बड़ी विपत्ति कभी नहीं पड़ी, पर इस समय विजयी बादशाह की आज्ञा को शिरोधार्य करने के सिवा प्राण-रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं था।

बेगमों ने यह आज्ञा सुनी तो हतबुद्धि-सी हो गईं। सारे रनिवास में मातम-सा छा गया। वह चहल-पहल गायब हो गई। सैकड़ों हृदयों से इस अत्याचारी के प्रति एक शाप निकल गया। किसी ने आकाश की ओर सहायता-याचक लोचनों से देखा, किसी ने खुदा और रसूल का सुमिरन किया। पर ऐसी एक महिला भी न थी जिसकी निगाह कटार या तलवार की तरफ़ गई हो। यद्यपि इनमें कितनी ही बेगमों के नसों में राजपूतनियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था, पर इन्द्रियलिप्सा ने "जुहार" की पुरानी आग ठंडी कर दी थी। सुख-भोग की लालसा आत्मसम्मान का सर्वनाश कर देती है। आपस में सलाह करके मर्यादा की रक्षा का कोई उपाय सोचने की मुहलत न थी। एक एक पल भाग्य का निर्णय कर रहा था। हताश होकर सभी ललनाओं ने पापी के सम्मुख जाने का निश्चय किया। आँखों से आँसू जारी थे, दिलों से आहें निकल रही थीं, पर रत्न-जटित आभूषण पहने जा रहे थे,

अश्रु-सिंचित नेत्रों में सुरमा लगाया जा रहा था और शोक-व्यथित हृदयों पर सुगन्ध का लेप किया जा रहा था। कोई केश गुँथाती थी, कोई माँगों में मोतियाँ पिरोती थी। एक भी ऐसे पक्के इरादे की स्त्री न थी जो ईश्वर पर, अथवा अपनी टेक पर, इस आज्ञा को उल्लंघन करने का साहस कर सके।

एक घंटा भी न गुज़रने पाया था कि बेगमात परे के परे, आभूषणों से जगमगाती, अपने मुख की कांति से बेले और गुलाब की कलियों को लजाती, सुगंध की लपटें उड़ाती, छमछम करते हुए दीवाने-ख़ास में आकर नादिरशाह के सामने खड़ी हो गईं।

(३)

नादिरशाह ने एक बार कनखियों से परियों के इस दल को देखा और तब मसनद की टेक लगाकर लेट गया। अपनी तलवार और कटार सामने रख दी। एक क्षण में उसकी आँखें झपकने लगीं। उसने एक अँगड़ाई ली और करवट बदल ली। ज़रा देर में उसके ख़र्राटों की आवाजें सुनाई देने लगीं। ऐसा जान पड़ा कि वह गहरी निद्रा में मग्न हो गया है। आध घंटे तक वह पड़ा सोता रहा, और बेगमें ज्यों की त्यों सिर नीचा किये दीवार के चित्रों की भाँति खड़ी रहीं। उनमें दो-एक महिलाएँ जो ढीठ थीं घूँघट की ओट से नादिरशाह को देख भी रही थीं और आपस में दबी ज़बान से कानाफूसी कर रही थीं—कैसा भयंकर स्वरूप है! कितनी रणोन्मत्त आँखें हैं! कितना भारी शरीर है! आदमी काहे को है, देव है!

सहसा नादिरशाह की आँखें खुल गईं। परियों का दल पूर्ववत् खड़ा था। उसे जागते देखकर बेगमों ने सिर नीचे कर लिये और अंग समेटकर भेड़ों की भाँति एक दूसरे से मिल गईं। सबके दिल धड़क रहे थे कि अब यह ज़ालिम नाचने-गाने को कहेगा, तब कैसे क्या होगा! खुदा इस ज़ालिम से समझे! मगर नाचा तो न जायगा। चाहे जान ही क्यों न जाये। इससे ज्यादा ज़िल्लत अब न सही जायगी।

सहसा नादिरशाह कठोर शब्दों में बोला—ऐ खुदा की बन्दियो, मैंने तुम्हारा इम्तहान लेने के लिए बुलाया था और अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारी निसबत मेरा जो गुमान था वह हर्फ़ ब हर्फ़ सच निकला। जब किसी क़ौम की औरतों में ग़ैरत नहीं रहती, तो वह क़ौम मुरदा हो जाती है। मैं देखना चाहता था कि तुम लोगों में अभी कुछ ग़ैरत बाक़ी है या नहीं। इसी लिए मैंने तुम्हें यहाँ बुलाया था। मैं तुम्हारी बेहुरमती नहीं करना चाहता था। मैं इतना ऐश का बन्दा नहीं हूँ, वरना आज भेड़ों के गल्ले चराता होता। नइतना हवसपरस्त हूँ, वरना आज फ़ारस में सरोद और सितार की तानें सुनता होता, जिसका मज़ा मैं हिन्दुस्तानी गाने से कहीं ज्यादा उठा सकता हूँ। मुझे सिर्फ़ तुम्हारा इम्तहान लेना था। मुझे यह देखकर सच्चा मलाल हो रहा है कि तुममें ग़ैरत का जौहर बाक़ी नहीं रहा। क्या यह मुमकिन न था कि तुम मेरे हुक्म को पैरों-तले कुचल देतीं? जब तुम यहाँ आ गईं तो मैंने तुम्हें एक और मौक़ा दिया। मैंने नींद का बहाना किया।

क्या यह मुमकिन न था कि तुममें से कोई खुदा की बन्दी इस कटार को उठाकर मेरे जिगर में चुभा देती। मैं कलामे-पाक की क़सम खाकर कहता हूँ कि तुममें से किसी को कटार पर हाथ रखते देखकर मुझे बेहद खुशी होती, मैं उन नाजुक हाथों के सामने गरदन झुका देता। पर अफ़सोस है कि आज तैमूरी खानदान की एक बेटी भी यहाँ ऐसी न निकली जो अपनी हुरमत बिगाड़नेवाले पर हाथ उठाती! अब यह सल्तनत ज़िन्दा नहीं रह सकती। इसकी हस्ती के दिन गिने हुए हैं। इसका निशान बहुत जल्द दुनिया से मिट जायगा। तुम लोग जाओ और हो सके तो अब भी सल्तनत को बचाओ, वरना इसी तरह हवस की गुलामी करते हुए दुनिया से रुखसत हो जाओगी!

तेंतर

(१)

आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी, जिसकी चिन्ता में घर के सभी लोग और विशेषतः प्रसूता पड़ी हुई थी। तीन पुत्रों के पश्चात् कन्या का जन्म हुआ। माता सौर में सूख गई, पिता बाहर आँगन में सूख गये, और पिता की वृद्धा माता सौर के द्वार पर सूख गई। अनर्थ, महाअनर्थ! भगवान् ही कुशल करें तो हो! यह पुत्री नहीं राक्षसी है। इस अभागिनी को इसी घर में आना था! आना ही था तो कुछ दिन पहले क्यों न आई भगवान् सातवें शत्रु के घर भी तेंतर का जन्म न दें।

पिता का नाम था पण्डित दामोदरदत्त, शिक्षित आदमी थे। शिक्षा-विभाग ही में नौकर भी थे, मगर इस संस्कार को कैसे मिटा देते, जो परम्परा से हृदय में जमा हुआ था, कि तीसरे बेटे की पीठ पर होनेवाली कन्या अभागिनी होती है या पिता को लेती है या माता को, या अपने को। उनकी वृद्धा माता लगीं नवजात कन्या को पानी पी पीकर कोसने, कलमुही है कलमुही! न-जाने क्या करने आई है यहाँ। किसी बाँझ के घर जाती तो उसके दिन फिर जाते!

दामोदरदत्त दिल में तो घबराये हुए थे पर माता को समझा

ने लगे—अम्माँ तेंतर-वेंतर कुछ नहीं, भगवान् की जो इच्छा होती है वही होता है। ईश्वर चाहेंगे तो सब कुशल ही होगा, गानेवालियों को बुला लो, नहीं लोग कहेंगे तीन बेटे हुए तो कैसी फूली फिरती थीं, एक बेटी हो गई तो घर में कुहराम मच गया!

माता—अरे बेटा, तुम क्या जानो इन बातों को, मेरे सिर तो बीत चुकी है, प्राण नहों में समाया हुआ है। तेंतर ही के जन्म तुम्हारे दादा का देहान्त हुआ। तभी से तेंतर का नाम सुनते ही मेरा कलेजा काँप उठता है।

दामोदर—इस कष्ट के निवारण का भी तो कोई उपाय होगा!

माता—उपाय बताने को तो बहुत हैं, पंडितजी से पूछो तो कोई न कोई उपाय बता देंगे, पर इससे कुछ होता नहीं। मैंने कौनसे अनुष्ठान नहीं किये, पर पंडितजी की तो मुट्ठियाँ गरम हुईं, यहाँ जो सिर पर पड़ना था वह पड़ ही गया। अब टके के पंडित रह गये हैं, जजमान मरे या जिये उनकी बला से, उनको दक्षिणा मिलनी चाहिए। (धीरे से) लड़की दुबली-पतली भी नहीं है। तीनों लड़कों से हृष्ट-पुष्ट है। बड़ी बड़ी आँखें हैं, पतले पतले लाल लाल ओंठ हैं, जैसे गुलाब की पत्ती। गोरा चिट्टा रंग है, लम्बी-सी नाक। कलमुही नहलाते समय रोई भी नहीं, टुकुर टुकुर ताकती रही, यह सब लच्छन कुछ अच्छे थोड़े ही हैं!

दामोदरदत्त के तीनों लड़के साँवले थे, कुछ विशेष रूपवान् भी न थे; लड़की के रूप का बखान सुनकर उनका चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। बोले—अम्माँजी, तुम भगवान् का नाम लेकर गाने-

वालियों को बुला भेजो, गाना-बजाना होने दो। भाग्य में जो कुछ है वह तो होगा ही।

माता—जी तो हुलसता ही नहीं करूँ क्या !

दामोदर—गाना न होने से कष्ट का निवारण तो होगा नहीं, कि हो जायगा ? अगर इतने सस्ते जान छूटे तो न कराओ गाना।

माता—बुलाये लेती हूँ बेटा, जो कुछ होना था वह तो हो गया।

इतने में, दाई ने सौर में से पुकारकर कहा—बहूजी कहती हैं गाना-वाना कराने का काम नहीं है।

माता—भला भला, उनसे कहो चुपकी बैठी रहें, बाहर निकलकर मनमानी करेंगी, बारह ही दिन हैं बहुत दिन नहीं हैं; बहुत इतराती फिरती थीं यह न करूँगी, वह न करूँगी, देवी क्या है, देवता क्या है, मरदों की बातें सुनकर वही रट लगाने लगती थीं, तो अब चुपके से बैठतीं क्यों नहीं। मेमें तो तेंतर का अशुभ नहीं मानतीं, और सब बातों में मेमों की बराबरी करती हैं तो इस बात में भी करें !

यह कहकर माताजीने नाइन को भेजा कि जाकर गानेवालियों को बुला ला, पड़ोस में भी कहती जाना।

सवेरा होते ही बड़ा लड़का सोकर उठा और आँखें मलता हुआ आकर दादी से पूछने लगा—बड़ी अम्माँ, कल अम्माँ को क्या हुआ?

माता—लड़की तो हुई है !

बालक खुशी से उछलकर बोला—ओ हो हो, पैजनियाँ पहन पहनकर छुनछुन चलेगी, ज़रा मुझे दिखा दो दादीजी !

माता—अरे क्या सौर में जायेगा, पागल है,   है क्या ?

लड़के की उत्सुकता न मानी। सौर के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया और बोला—अम्माँ, जरा बच्ची को मुझे दिखा दो।

दाई ने कहा—बच्ची अभी सोती है।

बालक—ज़रा दिखा दो, गोद में लेकर।

दाई ने कन्या उसे दिखा दी तो वहाँ से दौड़ता हुआ अपने छोटे भाइयों के पास पहुँचा और उन्हें जगा जगाकर खुशखबरी सुनाई।

एक बोला—नन्हीं-सी होगी ?

बड़ा—बिलकुल नन्ही-सी! बस जैसी बड़ी गुलिया। ऐसी गोली है कि क्या किसी साहब की लड़की होगी। यह लड़की मैं लूँगा।

सबसे छोटा बोला—अमको बी दिका दो।

तीनों मिलकर लड़की को देखने आये और वहाँ से बग़लें बजाते, उछलते कूदते बाहर आये।

बड़ा—देखा कैसी है ?

मँझला—कैसी आँखें बन्द किये पड़ी थी!

छोटा—इसे हमें तो देना!

बड़ा—खूब द्वार पर बरात आयेगी, हाथी. घोड़े बाजे, आतशबाजी।

मँझला और छोटा ऐसे मग्न हो रहे थे मानो वह मनोहर दृश्य आँखों के सामने है, उनके सरल नेत्र मनोल्लास से चमक रहे थे।

मँझला बोला—फुलवारियाँ भी होंगी।

छोटा—अम बी पूल लेंगे!

(२)

छट्ठी भी हुई, बरही भी हुई, गाना-बजाना खाना-खिलाना देना-दिलाना सब कुछ हुआ पर रस्म पूरी करने के लिए, दिल से नहीं, खुशी से नहीं। लड़की दिन दिन दुर्बल और अस्वस्थ होती जाती थी। माँ उसे दोनों वक्त अफ़ीम खिला देती और बालिका दिन और रात नशे में बेहोश पड़ी रहती। ज़रा भी नशा उतरता तो भूख से विकल होकर रोने लगती। माँ कुछ ऊपरी दूध पिला-कर फिर अफ़ीम खिला देती। आश्चर्य की बात तो यह थी कि अब की उसकी छाती में दूध ही नहीं उतरा। यों भी उसे दूध देर में उतरता था, पर लड़कों की बेर उसे नाना प्रकार की दूधवर्द्धक औषधियाँ खिलाई जातीं, बार बार शिशु को छाती से लगाया जाता, यहाँ तक कि दूध उतर ही आता था, पर अब की यह आयोजनाएँ न की गईं। फूल-सी बच्ची कुम्हलाती जाती थी। माँ तो कभी उसकी ओर ताकती भी न थी, हाँ नाइन कभी चुटकियाँ बजाकर चुमकारती तो शिशु के मुख पर ऐसी दयनीय, ऐसी करुण वेदना अंकित दिखाई देती कि वह आँखें पोछती हुई चली जाती थी। बहू से कुछ कहने-सुनने का साहस न पड़ता था। बड़ा लड़का सिद्धू बार बार कहता—अम्माँ, बच्ची को दो तो बाहर से खेला लाऊँ; पर माँ उसे झिड़क देती थी।

तीन-चार महीने हो गये। दामोदरदत्त रात को पानी पीने उठे तो देखा कि बालिका जाग रही है। सामने ताख पर मीठे तेल का दीपक जल रहा था, लड़की टकटकी बाँधे उसी दीपक की

ओर देखती थी और अपना अँगूठा चूसने में मग्न थी। चुभ-चुभ की आवाज़ आ रही थी। उसका मुख मुरझाया हुआ था, पर वह न रोती थी न हाथ पैर फेंकती थी, बस अँगूठा पीने में ऐसी मग्न थी मानो उसमें सुधा-रस भरा हुआ है। वह माता के स्तनों की ओर मुँह भी नहीं फेरती थी, मानो उसका उन पर कोई अधिकार नहीं, उसके लिए वहाँ कोई आशा नहीं। बाबू साहब को उस पर दया आई? इस बेचारी का मेरे घर जन्म लेने में क्या दोष है? मुझ पर या इसकी माता पर जो कुछ भी पड़े, उसमें इसका क्या अपराध? हम कितनी निर्दयता कर रहे हैं कि एक कल्पित अनिष्ट के कारण उसका इतना तिरस्कार कर रहे हैं। माना कि कुछ अमङ्गल हो भी जाय तो भी क्या उसके भय से इसके प्राण ले लिये जायेंगे? अगर अपराधी है तो मेरा प्रारब्ध है, इस नन्हे-से बच्चे के प्रति हमारी कठोरता क्या ईश्वर को अच्छी लगती होगी? उन्होंने उसे गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमने लगे। लड़की को कदाचित् पहली बार सच्चे स्नेह का ज्ञान हुआ। वह हाथ पैर उछालकर 'गूँ गूँ' करने लगी और दीपक की ओर हाथ फैलाने लगी उसे जीवन-ज्योति-सी मिल गई।

प्रातःकाल दामोदरदत्त लड़की को गोद में उठा लिया और बाहर लाये। स्त्री ने बार बार कहा—उसे पड़ा रहने दो, ऐसी कौनसी बड़ी सुन्दर है, अभागिनी रात-दिन तो प्राण खाती रहती है, मर भी नहीं जाती कि जान छूट जाय, किन्तु दामोदरदत्त ने न माना. उसे बाहर लाये और अपने बच्चों के साथ बैठकर उसे खेलाने

लगे। उनके मकान के सामने थोड़ी-सी ज़मीन पड़ी हुई थी। पड़ोस के किसी आदमी की एक बकरी उसमें आकर चरा करती थी। इस समय भी वह चर रही थी। बाबू साहब ने बड़े लड़के से कहा—सिद्धू, ज़रा उस बकरी को पकड़ो, तो इसे दूध पिलायें, शायद भूखी है बेचारी, देखो तुम्हारी नन्हीं सी बहन है न? इसे रोज़ हवा में खेलाया करो।

सिद्धू को दिल्लगी हाथ आई, उसका छोटा भाई भी दौड़ा, दोनों ने घेरकर बकरी को पकड़ा और उसका कान पकड़े हुए सामने लाये। पिता ने शिशु का मुँह बकरी के थन से लगा दिया। लड़की चुबलाने लगी, और एक क्षण में दूध की धार उसके मुँह में जाने लगी। मानो टिमटिमाते दीपक में तेल पड़ जाय। लड़की का मुख खिल उठा। आज शायद पहली बार उसकी क्षुधा तृप्त हुई थी, वह पिता की गोद में हुमक हुमककर खेलने लगी। लड़कों ने भी उसे खूब नचाया-कुदाया।

उस दिन से सिद्धू को मनोरञ्जन का एक नया विषय मिल गया। बालकों को बच्चों से बहुत प्रेम होता है। अगर किसी घोंसलें में चिड़िया का बच्चा देख पायें तो बार बार वहाँ जायेंगे, देखेंगे कि माता बच्चे को कैसे दाना चुगाती है, बच्चा कैसे चोंच खोलता है, कैसे दाना लेते समय परों को फड़फड़ा कर चें चें करता है, आपस में बड़े गम्भीर भाव से उसका चरचा करेंगे, अपने अन्य साथियों को ले जाकर उसे दिखायेंगे। सिद्धू ताक में लगा रहता, ज्यों ही माता भोजन बनाने या स्नान करने जाती

तुरन्त बच्ची को लेकर आता और बकरी को पकड़कर उसके थन से शिशु का मुँह लगा देता, कभी कभी दिन में दो दो-तीन तीन बार पिलाता। बकरी को भूसी-चोकर खिलाकर ऐसा परचा लिया कि वह स्वयं चोकर के लोभ से चली आती और दूध देकर चली जाती। इस भाँति कोई एक महीना गुजर गया, लड़की हृष्ट-पुष्ट हो गई, मुख पुष्प के समान विकसित हो गया, आँखें जाग उठीं, शिशु-काल की सरल आभा मन को हरने लगी।

माता उसे देख देखकर चकित होती थी। किसी से कुछ कह तो न सकती पर दिल में उसे आशंका होती थी कि अब यह मरने की नहीं, हमीं लोगों के सिर जायेगी, कदाचित् ईश्वर इसकी रक्षा कर रहे हैं, जभी तो दिन दिन निखरती आती है, नहीं अब तक तो ईश्वर के घर पहुँच गई होती।

(३)

मगर दादी माता से कहीं ज्यादा चिन्तित थी। उसे भ्रम होने लगा कि वह बच्ची को खूब दूध पिला रही है, साँप को पाल रही है, शिशु की ओर आँख उठाकर भी न देखती, यहाँ तक कि एक दिन कह ही बैठी, लड़की का बड़ा छोह करती हो? हाँ भाई, माँ हो कि नहीं, तुम न छोह करोगी तो करेगा कौन?

"अम्माँजी, ईश्वर जानते हैं जो मैं इसे दूध पिलाती होऊँ!"

"अरे तो मैं मना थोड़े ही करती हूँ, मुझे क्या गरज पड़ी है कि मुफ्त में अपने ऊपर पाप लूँ, कुछ मेरे सिर तो जायेगी नहीं।"

"अब आपको विश्वास ही न आवे तो कोई क्या करे!"

"मुझे पागल समझती हो, वह हवा पी पीकर ऐसी हो रही है?"

"भगवान् जाने अम्माँ, मुझे तो आप अचरज होता है।"

बहू ने बहुत निर्दोषता जताई किन्तु वृद्धा सास को विश्वास न आया। उसने समझा, यह मेरी शंका को निर्मूल समझती है, मानो मुझे इस बच्ची से कोई वैर है। उसके मन में यह भाव अंकुरित होने लगा कि इसे कुछ हो जाय तब यह समझे कि मैं झूठ नहीं कहती थी। वह जिन प्राणियों को अपने प्राणों से भी प्रिय समझती थी, उन्हीं लोगों की अमंगल कामना करने लगी, केवल इस लिए कि मेरी शंकाएँ सत्य हो जायें। वह यह तो नहीं चाहती थी कि कोई मर जाय, पर इतना अवश्य चाहती थी कि किसी बहाने से मैं चेता दूँ कि देखो, तुमने मेरा कहा न माना, यह उसी का फल है। उधर सास की ओर से ज्यों ज्यों यह द्वेष भाव प्रकट होता था, बहू का कन्या के प्रति स्नेह बढ़ता था, ईश्वर से मनाती रहती थी कि किसी भाँति एक साल कुशल से कट जाते तो इनसे पूछती। कुछ लड़की का भोला-भाला चेहरा कुछ अपने पति का प्रेम-वात्सल्य देखकर भी उसे प्रोत्साहन मिलता था। विचित्र दशा हो रही थी, न दिल खोलकर प्यार ही कर सकती थी, न सम्पूर्ण रीति से निर्दय होते ही बनता था, न हँसते बनता था न रोते।

इस भाँति दो महीने और गुज़र गये और कोई अनिष्ट न हुआ। तब तो वृद्धा सास के पेट में चूहे दौड़ने लगे। बहू को दो-चार दिन ज्वर भी नहीं आ जाता कि मेरी शंका की मर्याद जाय, पुत्र भी किसी दिन पैरगाड़ी पर से नहीं गिर पड़

बहू के मैके ही से किसी के स्वर्गवास की सुनावनी आती है। एक दिन दामोदरदत्त ने खुले तौर पर कह भी दिया कि अम्माँ, यह सब ढकोसला है, तेंतर लड़कियाँ क्या दुनिया में होती ही नहीं, तो सबके माँ-बाप मर ही जाते हैं? अंत मे उसने अपनी शंकाओं को यथार्थ सिद्ध करने की एक तरकीब सोच निकाली। एक दिन दामोदरदत्त स्कूल से आये तो देखा कि अम्माँजी खाट पर अचेत पड़ी हुई हैं, स्त्री अँगेठी में आग रक्खे उनकी छाती सेंक रही है, और कोठरी के द्वार और खिड़कियाँ बन्द हैं। घबराकर कहा—अम्माँजी, क्या हुआ है?

स्त्री—दोपहर ही से कलेजे में शूल उठ रहा है, बेचारी बहुत तड़प रही हैं।

दामोदर—मैं जाकर डाक्टर साहब को बुला लाऊँ न? देर करने से शायद रोग बढ़ जाय। अम्माँजी, अम्माँजी, कैसी तबीयत है?

माता ने आँखें खोलीं और कराहते हुए बोली—बेटा, तुम आ गये? अब न बचूँगी, हाय भगवान् अब न बचूँगी, जैसे कोई कलेजे में बरछी चुभा रहा हो। ऐसी पीड़ा कभी न हुई थी। इतनी उम्र बीत गई ऐसी पीड़ा नहीं हुई।

स्त्री—यह कलमुँही छोकरी न-जाने किस मनहूस घड़ी पैदा हुई।

सास—बेटा, सब भगवान् करते हैं, यह बेचारी क्या जाने! देखो मैं मर जाऊँ तो उसे कष्ट मत देना। अच्छा हुआ, मेरे सिर आई। किसी के सिर तो जाती ही, मेरे ही सिर सही, हाय भगवान्, अब न बचूँगी।

दामोदर—जाकर डाक्टर को बुला लाऊँ? अभी लौटा आता हूँ।

माताजी को केवल अपनी बात की मर्यादा निभानी थी, रुपये न खर्च कराने थे, बोलीं—नहीं बेटा, डाक्टर के पास जाके क्या करोगे, अरे वह कोई ईश्वर है! डाक्टर क्या अमृत पिला देगा, दस-बीस वह भी ले जायगा, डाक्टर-वैद्य से कुछ न होगा! बेटा, तुम कपड़े उतारो, मेरे पास बैठकर भागवत पढ़ो। अब न बचूँगी, हाय राम!

दामोदर—तेंतर है बुरी चीज़, मैं समझता था ढकोसला ही ढकोसला है!

स्त्री—इसी से मैं उसे कभी मुँह नहीं लगाती थी।

माता—बेटा, बच्चों को आराम से रखना, भगवान् तुम लोगों को सुखी रक्खे। अच्छा हुआ मेरे ही सिर गई, तुम लोगों के सामने मेरा परलोक हो जायगा। कहीं किसी दूसरे के सिर जाती तो क्या होता राम। भगवान् ने मेरी विनती सुन ली। हाय! हाय!!

दामोदरदत्त को निश्चय हो गया कि अब अम्माँ न बचेंगी। बड़ा दुख हुआ। उनके मन की बात होती तो वह माँ के बदले तेंतर को न स्वीकार करते! जिस जननी ने जन्म दिया, नाना प्रकार के कष्ट झेलकर उनका पालन-पोषण किया, अकाल वैधव्य को प्राप्त होकर भी उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया, उसके सामने एक दुध-मुँही बच्ची का क्या मूल्य था जिसके हाथ का एक गिलास पानी भी वह न जानते थे। शोकातुर हो कपड़े उतारे और माँ के सिरहाने बैठकर भागवत की कथा सुनाने लगे।

रात को जब बहू भोजन बनाने चली तो सास से बोली—अम्माँजी, तुम्हारे लिए थोड़ा-सा साबूदाना छोड़ दूँ?

माता ने व्यंग्य करके कहा—बेटी, अन्न विना न मारो. भला साबूदाना मुझसे खाया जायेगा, जाओ थोड़ी पूरियाँ छान लो। पड़े पड़े जो कुछ इच्छा होगी खा लूँगी। कचौरियाँ भी बना लेना। मरती हूँ तो भोजन को तरस तरस क्यों मरूँ। थोड़ी मलाई भी मँगवा लेना, चौक की हो। फिर थोड़ी खाने आऊँगी बेटी! थोड़े-से केले मँगवा लेना, कलेजे के दर्द में केले खाने से आराम होता है।

भोजन के समय पीड़ा शांत हो गई, लेकिन आध घंटे के बाद फिर ज़ोर से होने लगी। आधी रात के समय कहीं जाकर उनकी आँख लगी। एक सप्ताह तक उनकी यही दशा रही, दिन-भर पड़ी कराहा करतीं, बस भोजन के समय ज़रा वेदना कम हो जाती। दामोदरदत्त सिरहाने बैठे पंखा झलते और मातृ-वियोग के आगत शोक से रोते। घर की महरी ने महल्ले-भर में यह खबर फैला दी, पड़ोसिनें देखने आईं और सारा इलज़ाम उसी बालिका के सिर गया।

एक ने कहा—यह तो कहो बड़ी कुशल हुई कि बुढ़िया के सिर गई, नहीं तो तेंतर माँ-बाप दो में से एक को लेकर तभी शांत होती है, दैव न करे कि किसी घर में तेंतर का जन्म हो!

दूसरी बोली—मेरे तो तेंतर का नाम सुनते ही रोयें खड़े हो जाते हैं। भगवान् बाँझ रक्खे पर तेंतर न दे।

एक सप्ताह के बाद वृद्धा का कष्ट-निवारण हुआ, मरने में कोई कसर न थी, वह तो कहो पुरुखाओं का पुण्य-प्रताप था। ब्राह्मणों को गो-दान दिया गया। दुर्गा-पाठ हुआ तब कहीं जाके संकट कटा।

नैराश्य

(१)

बाजे आदमी अपनी स्त्री से इस लिए नाराज़ रहते हैं कि उसके लड़कियाँ ही क्यों होती हैं, लड़के क्यों नहीं होते। वह जानते हैं कि इसमें स्त्री का दोष नहीं है, या है तो उतना ही जितना मेरा, फिर भी जब देखिए स्त्री से रूठे रहते हैं, उसे अभागिनी कहते हैं और सदैव उसका दिल दुखाया करते हैं। निरूपमा उन्हीं अभागिनी स्त्रियों में थी और घमंडीलाल त्रिपाठी उन्हीं अत्याचारी पुरुषों में। निरूपमा के तीन बेटियाँ लगातार हुई थीं और वह सारे घर की निगाहों से गिर गई थी। सास-ससुर की अप्रसन्नता की तो उसे विशेष चिन्ता न थी, वे पुराने ज़माने के लोग थे जब लड़कियाँ गरदन का बोझ और पूर्वजन्मों का पाप समझी जाती थीं। हाँ उसे दुख अपने पतिदेव की अप्रसन्नता का था जो पढ़े-लिखे आदमी होकर भी उसे जली-कटी सुनाते रहते थे। प्यार करना तो दूर रहा, निरूपमा से सीधे मुँह बात न करते, कई कई दिनों तक घर ही में न आते और आते भी तो कुछ इस तरह खिंचे तने हुए रहते कि निरूपमा थरथर काँपती रहती थी कहीं गरज न उठें। घर में धन का अभाव न था, पर निरूपमा को कभी यह साहस न

होता था कि किसी सामान्य वस्तु की इच्छा भी प्रकट कर सके। वह समझती थी मैं यथार्थ में अभागिनी हूँ, नहीं तो क्या भगवान् मेरी कोख में लड़कियाँ ही रचते। पति के एक मृदु मुसक्यान के लिए, एक मीठी बात के लिए उसका हृदय तड़पकर रह जाता था ; यहाँ तक कि वह अपनी लड़कियों को प्यार करते हुए सकुचाती थी कि लोग कहेंगे पीतल के नथ पर इतना गुमान करती है! जब त्रिपाठीजी के घर में आने का समय होता तो किसी न किसी बहाने से वह लड़कियों को उनकी आँखों से दूर कर देती थी। सबसे बड़ी विपत्ति यह थी कि त्रिपाठीजी ने धमकी दी थी कि अब की कन्या हुई तो मैं घर छोड़कर निकल जाऊँगा, इस नरक में क्षणभर भी न ठहरूँगा। निरूपमा को यह चिन्ता और भी खाये जाती थी।

वह मंगल का व्रत रखती थी, रविवार, निर्जला एकादशी और न-जाने कितने व्रत करती थी। स्नान-पूजा तो नित्य का नियम था ; पर किसी अनुष्ठान से मनोकामना न पूरी होती थी। नित्य अवहेलना, तिरस्कार, उपेक्षा, अपमान, सहते सहते उसका चित्त संसार से विरक्त होता जाता था। जहाँ कान एक मीठी बात के लिए, आँखें एक प्रेम-दृष्टि के लिए, हृदय एक आलिंगन के लिए, तरस कर रह जायें, घर में अपनी कोई बात न पूछे, वहाँ जीवन से क्यों न अरुचि हो जाय ?

एक दिन घोर निराशा की दशा में उसने अपनी बड़ी भावज को एक पत्र लिखा। उसके एक एक अक्षर से असह्य वेदना टपक

निरूपमा—तुम तो यों बातें कर रही हो मानो उनकी प्रतिनिधि हो।

भावज—हाँ वह यह सब विषय मेरे ही द्वारा तय किया करते हैं। मैं ही भेंट लेती हूँ, मैं ही आशीर्वाद देती हूँ, मैं ही उनके हितार्थ भोजन कर लेती हूँ।

निरूपमा—तो यह कहो कि तुमने मुझे बुलाने के लिए यह हीला निकाला है।

भावज—नहीं; उसके साथ ही तुम्हें कुछ ऐसे गुर बता दूँगी जिससे तुम अपने घर आराम से रहो।

इसके बाद दोनों सखियों में कानाफूसी होने लगी। जब भावज चुप हुई तो निरूपमा बोली—और जो कहीं फिर कन्या ही हुई तो?

भावज—तो क्या! कुछ दिन तो शांति और सुख से जीवन कटेगा। यह दिन तो कोई लौटा न लेगा। पुत्र हुआ तो कहना ही क्या, पुत्री हुई तो फिर कोई नई युक्ति निकाली जायगी। तुम्हारे घर के जैसे अक्ल के दुश्मनों के साथ ऐसी ही चालें चलने में गुजारा है।

निरूपमा—मुझे तो संकोच मालूम होता है।

भावज—त्रिपाठीजी को दो-चार दिन में पत्र लिख देना कि महात्माजी के दर्शन हुए और उन्होंने मुझे वरदान दिया है। ईश्वर ने चाहा तो उसी दिन से तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा होने लगेगी।

करेंगे। कम से कम सालभर तो चैन की बंशी बजाना। इसके बाद देखी जायगी।

निरूपमा—पति से कपट करूँ तो पाप न लगेगा?

भावज—ऐसे स्वार्थियों से कपट करना पुण्य है।

(३)

तीन-चार महीने के बाद निरूपमा अपने घर आई। घमंडीलाल उसे बिदा कराने गये थे। सलहज ने महात्माजी का रंग और भी चोखा कर दिया। बोली—ऐसा तो किसी को देखा ही नहीं कि इन महात्माजी ने वरदान दिया हो और वह पूरा न हो गया हो। हाँ जिसका भाग्य ही फूट जाय उसे कोई क्या कर सकता है।

घमंडीलाल प्रत्यक्ष तो वरदान और आशीर्वाद की उपेक्षा ही करते रहे, इन बातों पर विश्वास करना आजकल संकोचजनक मालूम होता है, पर उनके दिल पर असर ज़रूर हुआ।

निरूपमा की ख़ातिरदारियाँ होनी शुरू हुईं। जब वह गर्भवती हुई तो सबके दिलों में नई नई आशाएँ हिलोरें लेने लगीं। सास जो उठते गाली और बैठते व्यंग्य से बातें करती थी अब उसे पान की तरह फेरती। बेटी, तुम रहने दो मैं ही रसोई बना लूँगी, तुम्हारा सिर दुखने लगेगा। कभी निरूपमा कलसे का पानी या कोई चारपाई उठाने लगती तो सास दौड़ती—बहू, रहने दो, मैं आती हूँ, तुम कोई भारी चीज़ मत उठाया करो। लड़कियों की बात और होती है, उन पर किसी बात का असर नहीं होता, लड़के तो गर्भ ही में मान करने लगते हैं। अब निरूपमा के लिए दूध का

ढठौना किया गया, जिसमें बालक पुष्ट और गोरा हो, घमंडीलाल वस्त्राभूषणों पर उतारू हो गये। हर महीने एक न एक नई चीज़ लाते। निरूपमा का जीवन इतना सुखमय कभी न था, उस समय भी नहीं जब वह नवेली वधू थी।

महीने गुज़रने लगे, निरूपमा को अनुभूत लक्षणों से विदित होने लगा कि यह भी कन्या ही है, पर वह इस भेद को गुप्त रखती थी। सोचती, सावन की धूप है, इसका क्या भरोसा, जितनी चीज़ धूप में सुखानी हों सुखा लो, फिर तो घटा छायेगी ही। बात बात पर बिगड़ती, वह कभी इतनी मानशीला न थी। पर घर में कोई चूँ तक न करता कि कहीं बहू का दिल न दुखे, नहीं बालक को कष्ट होगा। कभी कभी निरूपमा केवल घरवालों को जलाने के लिए अनुष्ठान करती, उसे उन्हें जलाने में मज़ा आता था। वह सोचती, तुम स्वार्थियों को जितना जलाऊँ उतना ही अच्छा! तुम मेरा आदर इसी लिए करते हो न कि मैं बच्चा जनूँगी और बच्चा तुम्हारे कुल का नाम चलायेगा। मैं कुछ नहीं हूँ, बालक ही सब कुछ है। मेरा अपना कोई महत्त्व नहीं, जो कुछ है वह बालक के नाते। यह मेरे पति हैं! पहले इन्हें मुझसे कितना प्रेम था, तब इतने संसार-लोलुप न हुए थे। अब इनका प्रेम केवल स्वार्थ का स्वाँग है। मैं भी पशु हूँ जिसे दूध के लिए चारा-पानी दिया जाता है। खैर यही सही, इस वक्त तो तुम मेरे काबू में आये हो! जितने गहने बन सकें बनवा लूँ, इन्हें तो छीन न लोगे।

इस तरह दस महीने पूरे हो गये। निरूपमा की दोनों ननदें ससुराल से बुलाई गईं, बच्चे के लिए पहले ही से सोने के गहने बनवा लिये गये, दूध के लिए एक सुन्दर दुधार गाय मोल ले ली गई, घमंडीलाल उसे हवा खिलाने को एक छोटी-सी सेजगाड़ी लाये। जिस दिन निरूपमा को प्रसव-वेदना होने लगी, द्वार पर पंडितजी मुहूर्त देखने के लिए बुलाये गये, एक मीरशिकार बंदूक छोड़ने को बुलाया गया, गायनें मंगल-गान के लिए बटोर ली गईं। घर में से तिल तिल पर खबर मँगाई जाती थी क्या हुआ? लेडी डाक्टर भी बुलाई गई। बाजेवाले हुक्म के इंतज़ार में बैठे थे। पामर भी अपनी सारंगी लिये 'जच्चा मान करे नन्दलाल सों' की तान सुनाने को तैयार बैठा था। सारी तैयारियाँ, सारी आशाएँ, सारा उत्साह, सारा समारोह एक ही शब्द पर अवलम्बित था। ज्यों ज्यों देर होती थी लोगों में उत्सुकता बढ़ती जाती थी। घमंडी-लाल अपने मनोभावों को छिपाने के लिए एक समाचारपत्र देख रहे थे मानो उन्हें लड़का या लड़की दोनों ही बराबर हैं। मगर उनके बूढ़े पिताजी इतने सावधान न थे। उनकी बाछें खिली जाती थीं, हँस हँसकर सबसे बातें कर रहे थे और पैसों की एक थैली को बार बार उछालते थे।

मीरशिकार ने कहा—मालिक से अब की पगड़ी दुपट्टा लूँगा।

पिताजी ने खिलकर कहा—अबे कितनी पगड़ियाँ लेगा? इतनी बेभाव की दूँगा कि सिर के बाल गंजे हो जायँगे।

पामर बोला—सरकार से अब की कुछ जीविका लूँगा।

पिताजी खिलकर बोले—अबे कितना खायेगा, खिला खिला-कर पेट फाड़ दूँगा।

सहसा महरी घर में से निकली। कुछ घबराई-सी थी। वह अभी कुछ बोलने भी न पाई थी कि मीरशिकार ने बंदूक़ फैर कर ही तो दी। बन्दूक़ छूटनी थी कि रौशनचौकी की तान भी छिड़ गई, पामर भी कमर कसकर नाचने को खड़ा हो गया।

महरी—अरे तुम सबके सब भंग खा गये हो क्या?

मीरशिकार—क्या हुआ क्या?

महरी—हुआ क्या, लड़की ही तो फिर हुई है!

पिताजी—लड़की हुई है!

यह कहते कहते वह कमर थामकर बैठ गये मानो वज्र गिर पड़ा। घमंडीलाल कमरे से निकल आये और बोले—जाकर लेडी डाक्टर से तो पूछ। अच्छी तरह देख लें। देखा न सुना चल खड़ी हुई!

महरी—बाबूजी, मैंने तो आँखों देखा है!

घमंडीलाल—कन्या ही है!

पिता—हमारी तक़दीर ही ऐसी है बेटा! जाओ रे सबके सब! तुम सभों के भाग्य में कुछ पाना न लिखा था तो कहाँ से पाते। भाग जाओ। सैकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, सारी तैयारी मिट्टी में मिल गई।

घमंडीलाल—इस महात्मा से पूछना चाहिए। मैं आज डाक से जाकर बचा की ख़बर लेता हूँ।

पिताजी—धूर्त है, धूर्त!

घमंडीलाल—मैं उनकी सारी धूर्तता निकाल दूँगा। मारे डंडों के खोपड़ी न तोड़ दूँ तो कहिएगा। चांडाल कहीं का! उसके कारण मेरे सैकड़ों रुपयों पर पानी फिरगया। यह नेजगाड़ी, यह गाना, यह पालना, यह सोने के गहने, किसके सिर पटकूँ। ऐसे ही उसने कितनों ही को ठगा होगा। एक दफ़ा बचा की मरम्मत हो जाती तो ठीक हो जाते।

पिताजी—बेटा उसका दोष नहीं, अपने भाग्य का दोष है।

घमंडीलाल—उसने क्यों कहा कि ऐसा नहीं ऐसा होगा। औरतों से इस पाखंड के लिए कितने ही रुपये ऐंठे होंगे। वह सब उन्हें उगलना पड़ेगा, नहीं तो पुलीस में रपट कर दूँगा। क़ानून में पाखंड का भी तो दण्ड है। मैं पहले ही चौंका था कि हो न हो पाखंडी है, लेकिन मेरी सलहज ने धोखा दिया, नहीं तो मैं ऐसे पाजियों के पंजे में कब आनेवाला था। एक ही सुअर है।

पिताजी—बेटा, सब्र करो, ईश्वर को जो कुछ मंजूर था वह हुआ। लड़का-लड़की दोनों ही ईश्वर की देन हैं, जहाँ तीन हैं वहाँ एक और सही।

पिता और पुत्र में तो यह बातें होती रहीं। पामर, मीरशिकार आदि ने अपने अपने डंडे सँभाले और अपनी राह चले, घर में मातम-सा छा गया, लेडी डाक्टर भी बिदा कर दी गई, सौर में जच्चा और दाई के सिवा कोई न रहा। वृद्धा माता तो इतनी हताश हुईं कि उसी वक्त अटवास-खटवास लेकर पड़ रहीं।

जब बच्चे की बरही हो गई तो घमंडीलाल स्त्री के पास गये और सरोष भाव से बोले—फिर लड़की हो गई!

घमंडीलाल—ऐसी कौनसी बड़ी बातें थीं जो याद न रहीं। यह खुद हम लोगों को जलाना चाहती हैं।

सास—वही तो मैं कहूँ कि महात्मा की बात कैसे निष्फल हुई। यहाँ सात बरसों तक 'तुलसी माई' को दिया चढ़ाया तब जाके बचा का जन्म हुआ।

घमंडीलाल—इन्होंने समझा था दाल-भात का कौर है!

सुकेशी—खैर, अब जो हुआ सो हुआ, कल मंगल है, फिर व्रत रक्खो और अब की सात ब्राह्मणों को जिमाओ। देखें कैसे महात्माजी की बात नहीं पूरी होती।

घमंडीलाल—व्यर्थ है, इनके किये कुछ न होगा।

सुकेशी—बाबूजी, आप विद्वान्, समझदार होकर इतना दिल छोटा करते हैं। अभी आपकी उम्र ही क्या है! कितने पुत्र लीजिएगा। नाकों दम न हो जाय तो कहिएगा।

सास—बेटी, दूध-पूत से भी किसी का मन भरा है।

सुकेशी—ईश्वर ने चाहा तो आप लोगों का मन भर जायगा। मेरा तो भर गया।

घमंडीलाल—सुनती हो महारानी, अब की कोई गोलमाल मत करना। अपनी भाभी से सब ब्योरा अच्छी तरह पूछ लेना।

सुकेशी—आप निश्चिन्त रहें, मैं याद करा दूँगी, क्या भोजन करना होगा, कैसे रहना होगा, कैसे स्नान करना होगा, यह सब लिखा दूँगी और अम्माँजी आज के १८ मास बाद आपसे कोई भारी इनाम लूँगी!

वर्णन करते। अभिमन्यु की कथा से निरूपमा को बड़ा प्रेम था। पिता अपने आनेवाले पुत्र को वीर-संस्कारों से परिपूरित कर देना चाहता था।

एक दिन निरूपमा ने पति से कहा—नाम क्या रक्खोगे?

घमंडीलाल—यह तो तुमने खूब सोचा। मुझे तो इसका ध्यान ही न रहा था। ऐसा नाम होना चाहिए जिससे शौर्य और तेज टपके। सोचो कोई नाम।

दोनों प्राणी नामों की व्याख्या करने लगे। जोरावरलाल से लेकर हरिश्चन्द्र तक सभी नाम गिनाये गये, पर उस असामान्य बालक के लिए कोई नाम न मिला। अन्त में पति ने कहा—तेग़-बहादुर कैसा नाम है?

निरूपमा—बस बस, यही नाम मुझे पसन्द है।

घमंडीलाल—नाम तो बढ़िया है। गुरु तेग़बहादुर की कीर्ति सुन ही चुकी हो। नाम का आदमी पर बड़ा असर होता है।

निरूपमा—नाम ही तो सब कुछ है। दमड़ी, छकौड़ी, घुरहू, कतवारू जिसके नाम देखे उसे भी 'यथा नामा तथा गुणाः' ही पाया। हमारे बच्चे का नाम होगा तेग़बहादुर।

(६)

प्रसव-काल आ पहुँचा। निरूपमा को मालूम था क्या होने-वाला है। लेकिन बाहर मंगलाचरण का पूरा सामान था। अब की किसी को लेशमात्र भी संदेह न था। नाच-गाने का प्रबन्ध भी किया गया था। एक शामियाना खड़ा किया गया था और

मित्रगण उसमें बैठे खुश-गप्पियाँ कर रहे थे। हलवाई कड़ाह से पूरियाँ और मिठाइयाँ निकाल रहा था। कई बोरे अनाज के रक्खे हुए थे कि शुभ समाचार पाते ही भिक्षुकों को बाँटे जायँ। एक क्षण का भी विलम्ब न हो, इस लिए बोरों के मुँह खोल दिये गये थे।

लेकिन निरूपमा का दिल प्रतिक्षण बैठा जाता था। अब क्या होगा? तीन साल किसी तरह कौशल से कट गये और मजे में कट गये, लेकिन अब विपत्ति सिर पर मँडला रही है। हाय! कितनी परवशता है। निरपराध होने पर भी यह दण्ड! अगर भगवान् की यही इच्छा है कि मेरे गर्भ से कोई पुत्र न जन्म ले तो मेरा क्या दोष! लेकिन कौन सुनता है। मैं ही अभागिनी हूँ, मैं ही त्याज्य हूँ, मैं ही कलमुही हूँ, इसी लिए न कि परवश हूँ! क्या होगा? अभी एक क्षण में यह सारा आनन्दोत्सव शोक में डूब जायगा, मुझ पर बौछारें पड़ने लगेंगी, भीतर से बाहर तक सब मुझी को कोसेंगे, सास-ससुर का भय नहीं, लेकिन स्वामीजी शायद फिर मेरा मुँह न देखें, शायद निराश होकर घर-बार त्याग दें। चारों तरफ़ अमङ्गल ही अमंगल है। मैं अपने घर की, अपनी संतान की दुर्दशा देखने के लिए क्यों जीवित रहूँ। कौशल बहुत हो चुका, अब उससे कोई आशा नहीं। मेरे दिल में कैसे कैसे अर-मान थे। अपनी प्यारी बच्चियों का लालन-पालन करती, उन्हें ब्याहती, उनके बच्चों को देखकर सुखी होती; पर आह! यह सब अरमान ख़ाक में मिले जाते हैं। भगवान्! अब तुम्हीं इनके पिता हो, तुम्हीं इनके रक्षक हो। मैं तो अब जाती हूँ।

लेडी डाक्टर ने कहा—वेल ! फिर लड़की है ।

भीतर-बाहर कुहराम मच गया, पिट्टस पड़ गई । घमण्डीलाल ने कहा—जहन्नुम में जाये ऐसी जिन्दगी, मौत भी नहीं आ जाती ।

उनके पिता भी बोले—अभागिनी है, वज्र अभागिनी !

भिक्षुकों ने कहा—रोओ अपनी तक़दीर को, हम कोई दूसरा द्वार देखते हैं ।

अभी यह शोकोद्गार शान्त न होने पाया था कि लेडी डाक्टर ने कहा—माँ का हाल अच्छा नहीं है । वह अब नहीं बच सकती । उसका दिल बन्द हो गया है ।

दण्ड

(१)

कार और चपरासी जेबें खनखनाते घर जा रहे थे। मेहतर कूड़े टटोल रहा था कि शायद कहीं पैसे-वैसे मिल जायँ। कचहरी के बरामदों में साँड़ों ने वकीलों की जगह ले ली थी। पेड़ों के नीचे मुहर्रिरों की जगह कुत्ते बैठे नज़र आते थे। इसी समय एक बूढ़ा आदमी, फटे-पुराने कपड़े पहने, लाठी टेकता हुआ, जंट साहब के बँगले पर पहुँचा और सायबान में खड़ा हो गया। जंट साहब का नाम था मिस्टर जी० सिनहा। अरदली ने दूर ही से ललकारा—कौन सायबान में खड़ा है? क्या चाहता है?

बूढ़ा—ग़रीब बाम्हन हूँ भैया, साहब से भेंट होगी?

अरदली—साहब, तुम-जैसों से नहीं मिला करते!

बूढ़े ने लाठी पर अकड़कर कहा—क्यों भाई, हम सड़े हैं, या डाकू-चोर हैं, कि हमारे मुँह में कुछ लगा हुआ है?

अरदली—भीख माँगकर मुक़दमा लड़ने आये होंगे?

बूढ़ा—तो कोई पाप किय है? अगर घर बेचकर मुक़दमा नहीं लड़ते तो कुछ बुरा करते हैं। यहाँ तो मुक़दमा लड़ते लड़ते उम्र बीत

गई, लेकिन घर का पैसा नहीं ख़रचा : मियाँ की जूती मियाँ का सिर करते हैं। दस भलेमानसों से माँगकर एक को दे दिया। चलो छुट्टी हुई। गाँव-भर नाम से काँपता है। किसी ने ज़रा भी टिर-पिर की और मैंने अदालत में दावा दायर किया।

अरदली—किसी बड़े आदमी से पाला नहीं पड़ा अभी!

बूढ़ा—अजी, कितने ही बड़ों को बड़े घर भिजवा दिया, तुम हो किस फेर में। हाई-कोर्ट तक जाता हूँ सीधा। कोई मेरे मुँह क्या आयेगा बेचारा? गाँठ से तो कौड़ी जाती नहीं, फिर डरें क्यों? जिसकी जिस चीज़ पर दाँत लगाये, अपना करके छोड़ा। सीधे से न दिया तो अदालत में घसीट लाये और रगेद रगेदकर मारा। अपना क्या बिगड़ता है। तो साहब से इत्तला करते हो कि मैं ही पुकारूँ?

अरदली ने देखा, यह आदमी यों टलनेवाला नहीं, तो ज़ाकर साहब से उसकी इत्तला की। साहब ने हुलिया पूछा, और खुश होकर कहा—फ़ौरन् बुला लो।

अरदली—हजूर, बिलकुल फटे हाल है।

साहब—गुदड़ी ही में लाल होते हैं। जाकर भेज दो।

मिस्टर सिनहा अधेड़ आदमी थे, बहुत ही शांत, बहुत ही विचारशील। बातें बहुत कम करते थे। कठोरता और असभ्यता, जो शासन का अंग समझी जाती है, उनको छू भी नहीं गई थी। न्याय और दया के देवता मालूम होते थे। निगाह ऐसी बारीक पाई थी कि सूरत देखते ही आदमी पहचान जाते थे। डील-डौल

देवों का-सा था और रंग आबनूस का-सा। आराम-कुरसी पर लेटे हुए पेचवान पी रहे थे। बूढ़े ने जाकर सलाम किया।

सिनहा—तुम हो जगत पाँड़े! आओ बैठो। तुम्हारा मुक़द्दमा तो बहुत ही कमज़ोर है। भले आदमी, जाल भी न करते बना?

जगत—ऐसा न कहें हजूर, गरीब आदमी हूँ, मर जाऊँगा।

सिनहा—किसी वकील-मुख़तार से सलाह भी न ले ली?

जगत—अब तो सरकार की सरन आया हूँ।

सिनहा—सरकार क्या मिसिल बदल देंगे, या नया क़ानून गढ़ेंगे। तुम गचा खा गये। मैं कभी क़ानून के बाहर नहीं जाता। जानते हो न अपील से कभी मेरी तजवीज़ रद्द नहीं होती!

जगत—बड़ा धरम होगा सरकार! (सिनहा के पैरों पर गिन्नियों की एक पोटली रखकर) बड़ा दुखी हूँ सरकार!

सिनहा—(मुसकिराकर) यहाँ भी अपनी चालबाज़ी से नहीं चूकते? निकालो अभी और। ओस से प्यास नहीं बुझती। भला दहाई तो पूरी करो।

जगत—बहुत तंग हूँ दीनबन्धु!

सिनहा—डालो डालो कमर में हाथ। भला कुछ मेरे नाम की लाज तो रक्खो।

जगत—लुट जाऊँगा सरकार!

सिनहा—लुटें तुम्हारे दुशमन, जो इलाक़ा बेचकर लड़ते हैं। तुम्हारे जजमानों का भगवान् भला करें, तुम्हें किस बात की कमी है!

मिस्टर सिनहा इस मामले में ज़रा भी रिआयत न करते थे। जगत ने देखा कि यहाँ काइयाँपन से काम न चलेगा तो चुपके से ५ गिन्नियाँ और निकालीं। लेकिन उन्हें मिस्टर सिनहा के पैरों पर रखते समय उसकी आँखों से खून निकल आया। यह उसकी बरसों की कमाई थी। बरसों पेट काटकर, तन जलाकर, मन बाँधकर, झूठी गवाहियाँ देकर, उसने यह थाती संचय कर पाई थी। उसका हाथों से निकलना प्राण निकलने से कम दुखदाई न था।

जगत पाँड़े के चले जाने के बाद, कोई ९ बजे रात को, जंट साहब के बँगले पर एक ताँगा आकर रुका और उसपर से पंडित सत्यदेव उतरे जो राजा साहब शिवपुर के मुखतार थे।

मिस्टर सिनहा ने मुसकिराकर कहा—आप शायद अपने इलाक़े में ग़रीबों को न रहने देंगे। इतना जुल्म!

सत्यदेव—ग़रीबपरवर, यह कहिए कि ग़रीबों के मारे अब इलाक़े में हमारा रहना मुश्किल हो रहा है। आप जानते हैं सीधी उँगली घी नहीं निकलता। ज़मींदार को कुछ न कुछ सख़्ती करनी ही पड़ती है, मगर अब यह हाल है कि हमने ज़रा चूँ भी की तो उन्हीं ग़रीबों की त्योरियाँ बदल जाती हैं। सब मुफ्त में ज़मीन जोतना चाहते हैं। लगान माँगिए तो फ़ौजदारी का दावा करने को तैयार! अब इसी जगत पाँड़े को देखिए। गंगा-क़सम है हुजूर सरासर झूठा दावा है। हुजूर से कोई बात छिपी तो रह नहीं सकती। अगर जगत पाँड़े यह मुक़दमा जीत गया तो हमें बोरिया

बचना छोड़कर भागना पड़ेगा। अब हुजूर ही बसायें तो बस सकते हैं। राजा साहब ने हुजूर को सलाम कहा है और अर्ज की है कि इस मामले में जगत पाँड़े की ऐसी ख़बर लें कि वह भी याद करे।

मिस्टर सिनहा ने भवें सिकोड़कर कहा—क़ानून मेरे घर तो नहीं बनता?

सत्यदेव—हुजूर के हाथ में सब कुछ है।

यह कहकर गिन्नियों की एक गड्डी निकालकर मेज़ पर रख दी। मिस्टर सिनहा ने गड्डी को आँखों से गिनकर कहा—इन्हें मेरी तरफ़ से राजा साहब की नज़र कर दीजिएगा। आख़िर आप कोई वकील तो करेंगे ही। उसे क्या दीजिएगा?

सत्यदेव—यह तो हुजूर के हाथ में है। जितनी ही पेशियाँ होंगी उतना ही ख़र्च भी बढ़ेगा।

सिनहा—मैं चाहूँ तो महीनों लटका सकता हूँ।

सत्यदेव—हाँ, इससे कौन इनकार कर सकता है!

सिनहा—पाँच पेशियाँ भी हुईं तो आपके कम से कम एक हज़ार उड़ जायेंगे। आप यहाँ उसका आधा पूरा कर दीजिए, तो एक ही पेशी में वारा न्यारा हो जाय! आधी रकम बच जाय।

सत्यदेव ने १० गिन्नियाँ और निकालकर मेज़ पर रख दीं और घमंड के साथ बोले—हुक्म हो तो राजा साहब से कह दूँ, आप इत्मीनान रक्खें, साहब की कृपा-दृष्टि हो गई है। मिस्टर सिनह तीव्र स्वर में कहा—जी नहीं, यह कहने की जरूरत नहीं। मैं कि

शर्त पर यह रक़म नहीं ले रहा हूँ। मैं करूँगा वही जो क़ानून की मंशा होगी। क़ानून के खिलाफ़ जौ-भर भी नहीं जा सकता। यही मेरा उसूल है। आप लोग मेरी खातिर करते हैं, यह आपकी शराफ़त है। मैं उसे अपना दुशमन समझूँगा जो मेरा ईमान खरीदना चाहे। मैं जो कुछ लेता हूँ सचाई का इनाम समझकर लेता हूँ।

(२)

जगत पाँड़े को पूरा विश्वास था कि मेरी जीत होगी, लेकिन तजवीज़ सुनी तो होश उड़ गये। दावा खारिज हो गया। उस पर खर्च की चपत अलग। मेरे साथ यह चाल! अगर लाला साहब को इसका मज़ा न चखा दिया तो बाम्हन नहीं, हैं किस फेर में? सारा रोब भुला दूँगा। यहाँ गाढ़ी कमाई के रुपये हैं। कौन पचा सकता है? हाड़ फोड़ फोड़कर निकलेंगे। इसी द्वार पर सिर पटक पटककर मर जाऊँगा।

उसी दिन संध्या को जगत पाँड़े ने मिस्टर सिनहा के बँगले के सामने आसन जमा दिया। वहाँ बरगद का एक घना वृक्ष था। मुक़दमेवाले वहीं सत्तू-चबेना खाते और दोपहरी उसी की छाँह में काटते थे। जगत पाँड़े उनसे मिस्टर सिनहा की दिल खोलकर निंदा करता। न कुछ खाता न पीता, बस लोगों को अपनी राम-कहानी सुनाया करता। जो सुनता वह जंट साहब को चार खोटी-खरी कहता—आदमी नहीं पिशाच है, इसे तो ऐसी जगह मारे जहाँ पानी न मिले, रुपये के रुपये लिये, ऊपर से खरचे समेत डिग्री

कर दी। यही करना था तो रुपये काहे को निगले थे! यह है हमारे भाई-बन्दों का हाल। यह अपने कहलाते हैं! इनसे तो अँगरेज़ ही अच्छे! इस तरह की आलोचनाएँ दिनभर हुआ करतीं। जगत पाँड़े के पास आठों पहर जमवट लगा रहता।

इस तरह चार दिन बीत गये और मिस्टर सिनहा के कानों में भी बात पहुँची। अन्य रिशवती कर्मचारियों की तरह वह भी हेकड़ आदमी थे। ऐसे निर्द्वन्द्व रहते मानो उनमें यह बुराई छू तक नहीं गई है। जब वह क़ानून से जौ-भर भी न टलते थे तो उन पर रिशवत का संदेह हो ही क्योंकर सकता था, और कोई करता भी तो उसकी मानता कौन? ऐसे चतुर खिलाड़ी के विरुद्ध कोई ज़ाब्ते की कारवाई कैसे होती? मिस्टर सिनहा अपने अफ़सरों से भी खुशामद का व्यवहार न करते। इससे हुक्काम भी उनका बहुत आदर करते थे। मगर जगत पाँड़े ने वह मंत्र मारा था जिसका उनके पास कोई उत्तर न था। ऐसे बाँगड़ आदमी से आज तक उन्हें साबिक़ा न पड़ा था। अपने नौकरों से पूछते—बुड्ढा क्या कह रहा है? नौकर लोग अपनापन जताने के लिए झूठ के पुल बाँध देते—हुज़ूर कहता था भूत बनकर लगूँगा, मेरी बेदी बने तो सही, जिस दिन मरूँगा उस दिन एक के सौ जगत पाँड़े होंगे। मिस्टर सिनहा पक्के नास्तिक थे लेकिन यह बातें सुन सुनकर सशंक हो जाते; और उनकी पत्नी तो थरथर काँपने लगतीं। वह नौकरों से बार बार कहतीं, उससे जाकर पूछो, क्या चाहता है। जितने रुपये चाहे ले ले, हमसे जो माँगे वह देंगे, बस यहाँ

चला जाय। लेकिन मिस्टर सिनहा आदमियों को इशारे से मना कर देते थे। उन्हें अभी तक आशा थी कि भूख-प्यास से व्याकुल होकर बुड्ढा चला जायगा। इससे अधिक यह भय था कि मैं ज़रा भी नरम पड़ा और नौकरों ने मुझे उल्लू बनाया।

छठे दिन मालूम हुआ कि जगत पाँड़े अबोल हो गया है, उससे हिला तक नहीं जाता, चुपचाप पड़ा आकाश की ओर देख रहा है, शायद आज रात को दम निकल जाय। मिस्टर सिनहा ने लंबी साँस ली और गहरी चिन्ता में डूब गये। पत्नी ने आँखों में आँसू भरकर आग्रह-पूर्वक कहा—तुम्हें मेरे सिर की क़सम, जाकर किसी तरह इस बला को टालो। बुड्ढा मर गया तो हम कहीं के न रहेंगे। अब रुपये का मुँह मत देखो। दो-चार हज़ार भी देने पड़ें तो देकर उसे मनाओ। तुमको जाते शर्म आती हो तो मैं चली जाऊँ।

सिनहा—जाने का इरादा तो मैं कई दिन से कर रहा हूँ, लेकिन जब देखता हूँ वहाँ भीड़ लगी रहती है, इससे हिम्मत नहीं पड़ती। सब आदमियों के सामने तो मुझसे न जाया जायगा चाहे कितनी ही बड़ी आफ़त क्यों न आ पड़े। तुम दो-चार हज़ार को कहती हो, मैं दस-पाँच हज़ार देने को तैयार हूँ। लेकिन वहाँ जा नहीं सकता। न-जाने किस बुरी साइत में मैंने इसके रुपये लिये। जानता कि यह इतना फिसाद खड़ा करेगा तो फाटक में घुसने ही न देता। देखने में तो ऐसा सीधा मालूम होता था कि गऊ है। मैंने पहली बार आदमी पहचानने में धोखा खाया।

पत्नी—तो मैं ही चली जाऊँ? शहर की तरफ़ से आऊँगी, और सब आदमियों को हटाकर अकेले में बातें करूँगी। किसी को ख़बर न होगी कि कौन है। इसमें तो कोई हरज नहीं है?

मिस्टर सिनहा ने संदिग्ध भाव से कहा—ताड़नेवाले ताड़ ही जायेंगे चाहे तुम कितना ही छिपाओ।

पत्नी—ताड़ जायेंगे ताड़ जायँ, अब इसको कहाँ तक डरूँ। बदनामी अभी क्या कम हो रही है जो और हो जायगी। सारी दुनिया जानती है कि तुमने रुपये लिये। यों ही कोई किसी पर प्राण नहीं देता। फिर अब व्यर्थ की ऐंठ क्यों करो।

मिस्टर सिनहा अब मर्मवेदना को न दबा सके। बोले—प्रिये, यह व्यर्थ की ऐंठ नहीं है। चोर को अदालत में बेत खाने से उतनी लज्जा नहीं आती, स्त्री को कलंक से उतनी लज्जा नहीं आती, जितनी किसी हाकिम को अपनी रिशवत का परदा खुलने से आती है। वह ज़हर खाकर मर जायगा, पर संसार के सामने अपना परदा न खोलेगा। वह अपना सर्वनाश देख सकता है, पर यह अपमान नहीं सह सकता। ज़िंदा खाल खिंचने, या कोल्हू में पेले जाने के सिवा और कोई ऐसी स्थिति नहीं है जो उससे अपना अपराध स्वीकार करा सके। इसका तो मुझे ज़रा भी भय नहीं है कि ब्राह्मण भूत बनकर हमको सतायेगा, या हमें उसकी बेदी बनाकर पूजनी पड़ेगी; यह भी जानता हूँ कि पाप का दंड भी बहुधा नहीं मिलता; लेकिन हिंदू होने के कारण संस्कारों की शंका कुछ कुछ बनी हुई है। ब्रह्म-हत्या का कलंक सिर पर लेते हुए

बस इतनी बात है। मैं आज रात को मौक़ा देखकर जाऊँगा और इस संकट को टालने के लिए जो कुछ हो सकेगा, करूँगा। ख़ातिरजमा रक्खो।

(३)

आधी रात बीत चुकी थी। मिस्टर सिनहा घर से निकले और अकेले जगत पाँड़े को मनाने चले। बरगद के नीचे बिलकुल सन्नाटा था। अंधकार ऐसा था मानो निशादेवी यहीं शयन कर रही हों। जगत पाँड़े की साँस ज़ोर ज़ोर से चल रही थी, मानो मौत ज़बरदस्ती घसीटे लिये जाती हो। मिस्टर सिनहा के रोयें खड़े हो गये। बुड्ढा कहीं मर तो नहीं रहा है? जेबी लालटेन निकाली और जगत के समीप जाकर बोले—पाँड़ेजी, कहो क्या हाल है?

जगत पाँड़े ने आँखें खोलकर देखा और उठने की असफल चेष्टा करके बोला—मेरा हाल पूछते हो? देखते नहीं हो, मर रहा हूँ।

सिनहा—तो इस तरह क्यों प्राण देते हो?

जगत—तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं क्या करूँ?

सिनहा—मेरी तो यह इच्छा नहीं, हाँ तुम अलबत्ता मेरा सर्वनाश करने पर तुले हुए हो। आख़िर मैंने तुम्हारे डेढ़ सौ रुपये ही तो लिये हैं। इतने ही रुपयों के लिए तुम इतना बड़ा अनुष्ठान कर रहे हो!!

जगत—डेढ़ सौ रुपये की बात नहीं है जी, तुमने मुझे मिट्टी में मिला दिया। मेरी डिग्री हो गई होती तो मुझे दस बीघे ज़मीन

मिल जाती और सारे इलाके में नाम हो जाता। तुमने मेरे डेढ़ सौ नहीं लिये, मेरे पाँच हज़ार बिगाड़ दिये। पूरे पाँच हज़ार। लेकिन यह घमंड न रहेगा, याद रखना। कहे देता हूँ, सत्यानाश हो जायेगा। इस अदालत में तुम्हारा राज्य है, लेकिन भगवान् के दरबार में विप्रों ही का राज्य है। विप्र का धन लेकर कोई सुखी नहीं रह सकता।

मिस्टर सिनहा ने बहुत खेद और लज्जा प्रकट की, बहुत अनुनय-विनय से काम लिया और अन्त में पूछा—सच बतलाओ पाँड़े, कितने रुपये पा जाओ तो यह अनुष्ठान छोड़ दो।

जगत पाँड़े अब की ज़ोर लगाकर उठ बैठे और बड़ी उत्सुकता से बोले—पाँच हज़ार से कौड़ी कम न लूँगा।

सिनहा—पाँच हज़ार तो बहुत होते हैं। इतना जुल्म न करो।

जगत—नहीं, इससे कम न लूँगा।

यह कहकर जगत पाँड़े फिर लेट गया। उसने ये शब्द इतने निश्चयात्मक भाव से कहे थे कि मिस्टर सिनहा को और कुछ कहने का साहस न हुआ। रुपये लाने घर चले। लेकिन घर पहुँचते पहुँचते नीयत बदल गई। डेढ़ सौ के बदले पाँच हज़ार देते कलक हुआ। मन में कहा—मरता है मर जाने दो, कहाँ की ब्रह्म-हत्या और कैसा पाप! यह सब पाखंड है। बदनामी ही न होगी? सरकारी मुलाज़िम तो यों ही बदनाम होते हैं, यह कोई नई बात थोड़े ही है। बचा कैसे उठ बैठे थे। समझा होगा, अच्छा उल्लू फँसा। अगर ६ दिन के उपवास करने से पाँच हज़ार मिलें तो मैं महीने में कम से कम पाँच मरतबा यह अनुष्ठान करूँ। पाँच

हज़ार नहीं, कोई मुझे एक ही हज़ार दे दे। यहाँ तो महीने-भर नाक रगड़ता हूँ तब जाके ६००) के दर्शन होते हैं। नोच-खसोट से भी शायद ही किसी महीने में इससे ज्यादा मिलता हो। बैठा मेरी राह देख रहा होगा। लेना रुपये, मुँह मीठा हो जायगा!

वह चारपाई पर लेटना चाहते थे कि उनकी पत्नीजी आकर खड़ी हो गईं। उनके सिर के बाल खुले हुए थे, आँखें सहमी हुई, रह रहकर काँप उठती थीं। मुँह से शब्द न निकलता था बड़ी मुश्किल से बोलीं—आधी रात तो हो गई होगी? तुम जगत पाँड़े के पास चले जाओ। मैंने अभी ऐसा बुरा सपना देखा है कि अभी तक कलेजा धड़क रहा है, जान संकट में पड़ी हुई थी। जाके किसी तरह उसे टालो।

मिस्टर सिनहा—वहीं से तो चला आ रहा हूँ। मुझे तुमसे ज्यादा फिक्र है। अभी आकर खड़ा ही हुआ था कि तुम आईं।

पत्नी—अच्छा! तो तुम गये थे! क्या बातें हुईं, राज़ी हुआ?

सिनहा—पाँच हज़ार रुपये माँगता है!

पत्नी—पाँच हज़ार!

सिनहा—कौड़ी कम नहीं करता और मेरे पास इस वक्त एक हज़ार से ज्यादा न होंगे।

पत्नीजी ने एक क्षण सोचकर कहा—जितना माँगता है उतना ही दे दो, किसी तरह गला तो छूटे। तुम्हारे पास रुपये न हों तो मैं दे दूँगी। अभी से सपने दिखाई देने लगे हैं। मरा तो प्राण कैसे बचेंगे। बोलता-चालता है न?

मिस्टर सिनहा अगर आबनूस थे तो उनकी पत्नी चंदन। सिनहा उनके गुलाम थे। उनके इशारों पर चलते थे। पत्नीजी भी पति-शासन कला में कुशल थीं। सौन्दर्य और अज्ञान में अपवाद है। सुन्दरी कभी भोली नहीं होती। वह पुरुष के मर्मस्थल पर आसन जमाना खूब जानती है।

सिनहा—तो लाओ देता आऊँ, लेकिन आदमी बड़ा चबड़ है, कहीं रुपये लेकर सबको दिखाता फिरे तो?

पत्नी—इसको इसी वक्त यहाँ से भगाना होगा।

सिनहा—तो निकालो दे ही दूँ। जिन्दगी में यह बात भी याद रहेगी।

पत्नीजी ने अविश्वास के भाव से कहा—चलो मैं भी चलती हूँ। इस वक्त कौन देखता है।

पत्नी से अधिक पुरुष के चरित्र का ज्ञान और किसी को नहीं होता। मिस्टर सिनहा की मनोवृत्तियों को उनकी पत्नीजी खूब जानती थीं। कौन जाने रास्ते में रुपये कहीं छिपा दें और कह दें, दे आये। या कहने लगें, रुपये लेकर भी नहीं टलता तो मैं क्या करूँ। जाकर संदूक से नोटों के पुलिंदे निकाले और उन्हें चादर में छिपाकर मिस्टर सिनहा के साथ चलीं। सिनहा के मुँह पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी। लालटेन लिये पछताते चले जाते थे। ५०००) निकले जाते हैं! फिर इतने रुपये कब मिलेंगे, कौन जानता है! इससे तो कहीं अच्छा था कि दुष्ट मर ही जाता। बला से बदनामी होती, कोई मेरी जेब से रुपये तो न छीन लेता। ईश्वर करे मर गया हो!

अभी दोनों आदमी फाटक ही तक आये थे कि देखा, जगत पाँड़े लाठी टेकता चला आता है। उसका स्वरूप इतना डरावना था मानो श्मशान से कोई मुरदा भागा आता हो।

इनको देखते ही जगत पाँड़े बैठ गया और हाँपता हुआ बोला—बड़ी देर हुई, लाये ?

पत्नीजी बोलीं—महाराज, हम तो आ ही रहे थे, तुमने क्यों कष्ट किया। रुपये लेकर सीधे घर चले जाओगे न ?

जगत—हाँ हाँ, सीधा घर जाऊँगा। कहाँ हैं रुपये, देखूँ!

पत्नीजी ने नोटों का पुलिंदा बाहर निकाला और लालटेन दिखाकर बोलीं—गिन लो। पूरे ५००० रुपये हैं !

पाँड़े ने पुलिंदा लिया और बैठकर उसे उलट-पुलटकर देखने लगा। उसकी आँखें एक नये प्रकाश से चमकने लगीं। हाथों में नोटों को तौलता हुआ बोला—पूरे पाँच हजार हैं !

पत्नी—पूरे। गिन लो !

जगत—पाँच हज़ार में तो टोकरी भर जायगी ! (हाथों से बताकर) इतने सारे हुए पाँच हज़ार !

सिनहा—क्या अब भी तुम्हें विश्वास नहीं आता ?

जगत—हैं हैं, पूरे हैं पूरे पाँच हज़ार! तो अब जाऊँ। भाग जाऊँ?

यह कहकर वह पुलिंदा लिये कई क़दम लड़खड़ाता हुआ चला, जैसे कोई शराबी; और तब धम से ज़मीन पर गिर पड़ा। मिस्टर सिनहा लपककर उठाने दौड़े तो देखा उसकी आँखें पथरा गई हैं और मुख पीला पड़ गया है। बोले—पाँड़े पाँड़े, क्या कहीं चोट आ गई?

पाँड़े ने एक बार मुँह खोला जैसे मरती हुई चिड़िया सिर लटकाकर चोंच खोल देती है। जीवन का अंतिम धागा भी टूट गया। ओंठ खुले हुए थे और नोटों का पुलिंदा छाती पर रक्खा हुआ था। इतने में पत्नीजी भी आ पहुँचीं और शव देखकर चौंक पड़ीं।

पत्नी—इसे क्या हो गया ?

सिनहा—मर गया, और क्या हो गया ?

पत्नी—(सिर पीटकर) मर गया ! हाय भगवान् ! अब कहाँ जाऊँ !

यह कहकर वह बँगले की ओर बड़ी तेजी से चलीं। मिस्टर सिनहा ने भी नोटों का पुलिंदा शव की छाती पर से उठा लिया और चले।

पत्नी—ये रुपये अब क्या होंगे ?

सिनहा—किसी धर्म-कार्य में दे दूँगा।

पत्नी—घर में मत रखना, ख़बरदार ! हाय भगवान् !

(४)

दूसरे दिन सारे शहर में ख़बर मशहूर हो गई—जगत पाँड़े ने जंट साहब पर जान दे दी। उसका शव उठा तो हज़ारों आदमी साथ थे। मिस्टर सिनहा को खुल्लमखुल्ला गालियाँ दी जा रही थीं।

संध्या-समय मिस्टर सिनहा कचहरी से आकर मन मारे बैठे थे कि नौकरों ने आकर कहा—सरकार, हमको छुट्टी दी जाय ! हमारा हिसाब कर दीजिए। हमारी बिरादरी के लोग धमकाते हैं

कि तुम जंट साहब की नौकरी करोगे तो हुक्का-पानी बंद हो जायगा।

सिनहा ने झल्लाकर कहा—कौन धमकाता है ?

कहार—किसका नाम बतायें सरकार! सभी तो कह रहे हैं।

रसोइया—हजूर, मुझे तो लोग धमकाते हैं कि मंदिर में न घुसने पाओगे।

सिनहा—एक महीने की नोटिस दिये बग़ैर तुम नहीं जा सकते।

साईस—हजूर, बिरादरी से बिगाड़ करके हम लोग कहाँ जायेंगे। हमारा आज से इस्तीफ़ा है। हिसाब जब चाहे कर दीजिएगा।

मिस्टर सिनहा ने बहुत धमकाया, फिर दिलासा देने लगे, लेकिन नौकरों ने एक न सुनी। आध घंटे के अंदर सबोंने अपना अपना रास्ता लिया। मिस्टर सिनहा दाँत पीसकर रह गये। लेकिन हाकिमों का काम कब रुकता है। उन्होंने उसी वक्त कोतवाल को ख़बर दी और कई आदमी बेगार में पकड़ आये। काम चल निकला।

उसी दिन से मिस्टर सिनहा और हिन्दू-समाज में खींच-तान शुरू हुई। धोबी ने कपड़े धोना बन्द कर दिया। ग्वाले ने दूध लाने में आनाकानी की। नाई ने हजामत बनानी छोड़ी। इन विपत्तियों पर पत्नीजी का रोना-धोना और भी ग़ज़ब था। उन्हें रोज़ भयंकर स्वप्न दिखाई देते। रात को एक कमरे से दूसरे में जाते प्राण निकलते थे। किसी का ज़रा सिर भी दुखता तो नहों में जान समा जाती। सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि अपने सम्बन्धियों ने भी

आना-जाना छोड़ दिया। एक दिन साले आये मगर बिना पानी पिये चले गये। इसी तरह एक दिन बहनोई का आगमन हुआ। उन्होंने पान तक न खाया। मिस्टर सिनहा बड़े धैर्य से यह सारा तिरस्कार सहते जाते थे। अब तक उनकी आर्थिक हानि न हुई थी। ग़रज़ के बावले झक मारकर आते ही थे और नज़र-नज़राना मिलता ही था। फिर विशेष चिन्ता का कोई कारण न था!

लेकिन बिरादरी से वैर करना पानी में रहकर मगर से बैर करना है। कोई न कोई ऐसा अवसर अवश्य ही आ जाता है जब हमको बिरादरी के सामने सिर झुकाना पड़ता है। मिस्टर सिनहा को भी साल के अन्दर ही ऐसा अवसर आ पड़ा। यह उनकी पुत्री का विवाह था। यही वह समस्या है जो बड़े बड़े हेकड़ों का घमंड चूर चूर कर देती है। आप किसी के आने-जाने की परवा न करें, हुक्का-पानी, भोज-भात, मेल-जोल, किसी बात की परवा न करें, मगर लड़की का विवाह तो न टलनेवाली बला है। उससे बचकर आप कहाँ जायँगे। मिस्टर सिनहा को इस बात का दग़दग़ा तो पहले ही था कि त्रिवेणी के विवाह में बाधाएँ पड़ेंगी, लेकिन उन्हें विश्वास था कि द्रव्य की अपार शक्ति इस मुश्किल को हल कर देगी। कुछ दिनों तक उन्होंने जान-बूझकर टाला कि शायद इस आँधी का ज़ोर कुछ कम हो जाय; लेकिन जब त्रिवेणी का सोलहवाँ साल समाप्त हो गया तो टाल-मटोल की गुंजायश न रही। संदेशे भेजने लगे। लेकिन जहाँ संदेसिया जाता वहीं जवाब मिलता—हमें मंजूर नहीं। जिन घरों में साल-भर पहले उनका संदेशा पाकर

लोग अपने भाग्य को सराहते, वहाँ से अब सूखा जवाब मिलता था—हमें मंजूर नहीं। मिस्टर सिनहा धन का लोभ देते, ज़मीन नज़र करने को कहते, लड़के को विलायत भेजकर ऊँची शिक्षा दिलाने का प्रस्ताव करते। किन्तु उनकी सारी आयोजनाओं का एक ही जवाब मिलता था—हमें मंजूर नहीं। ऊँचे घरानों का यह हाल देखकर मिस्टर सिनहा उन घरानों में संदेश भेजने लगे, जिनके साथ पहले बैठकर भोजन करने में भी उन्हें संकोच होता था। लेकिन वहाँ भी वही जवाब मिला—हमें मंजूर नहीं। यहाँ तक कि कई जगह वह खुद दौड़ दौड़कर गये, लोगों की मिन्नतें कीं, पर यही जवाब मिला—साहब, हमें मंजूर नहीं। शायद बहिष्कृत घरानों में उनका संदेशा स्वीकार कर लिया जाता, पर मिस्टर सिनहा जान-बूझकर मक्खी न निगलनी चाहते थे। ऐसे लोगों से सम्बंध न करना चाहते थे जिनका बिरादरी में कोई स्थान न था। इस तरह एक वर्ष बीत गया।

मिसेज़ सिनहा चारपाई पर पड़ी कराह रही थीं, त्रिवेणी भोजन बना रही थी और मिस्टर सिनहा पत्नी के पास चिंता में डूबे बैठे हुए थे। उनके हाथ में एक खत था, बार बार उसे देखते और कुछ सोचने लगते थे। बड़ी देर के बाद रोहिणी ने आँखें खोलीं और बोलीं—अब न बचूँगी। पाँड़े मेरी जान लेकर छोड़ेगा। हाथ में कैसा कागज है?

सिनहा—यशोदानंदन के पास से खत आया है। पाजी को यह खत लिखते हुए शर्म नहीं आती। मैंने इसकी नौकरी लगाई,

इसकी शादी करवाई और आज उसका मिज़ाज इतना बढ़ गया है कि अपने छोटे भाई की शादी मेरी लड़की से करना पसंद नहीं करता। अभागे के भाग्य खुल जाते!

पत्नी—भगवान्, अब ले चलो। यह दुर्दशा नहीं देखी जाती। अंगूर खाने का जी चाहता है, मँगवाये हैं कि नहीं?

सिनहा—मैं खुद जाकर लेता आया था।

यह कहकर उन्होंने तश्तरी में अंगूर भरकर पत्नी के पास रख दिये। वह उठा उठाकर खाने लगीं। जब तश्तरी खाली हो गई तो बोलीं—अब किसके यहाँ सन्देशा भेजोगे?

सिनहा—किसके यहाँ बतलाऊँ। मेरी समझ में तो अब कोई ऐसा आदमी नहीं रह गया। ऐसी बिरादरी में रहने से तो यह हजार दरजा अच्छा है कि बिरादरी के बाहर रहूँ। मैंने एक ब्राह्मण से रिशवत ली। इससे मुझे इनकार नहीं। लेकिन कौन रिशवत नहीं लेता। अपने गौं पर कोई नहीं चूकता। ब्राह्मण नहीं खुद ईश्वर ही क्यों न हों, रिशवत खानेवाले उन्हें भी चूस ही लेंगे। रिशवत देनेवाला अगर निराश होकर अपने प्राण दे देता है तो मेरा क्या अपराध? अगर कोई मेरे फैसले से नाराज़ होकर ज़हर खा ले तो मैं क्या कर सकता हूँ। इस पर भी मैं प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ; बिरादरी जो दण्ड दे उसे स्वीकार करने को तैयार हूँ। सबसे कह चुका हूँ मुझसे जो प्रायश्चित्त चाहो करा लो। पर कोई नहीं सुनता। दंड अपराध के अनुकूल होना चाहिए, नहीं तो यह अन्याय है। अगर किसी

मुसलमान का छुआ हुआ भोजन खाने के लिए बिरादरी मुझे काले पानी भेजना चाहे तो मैं उसे कभी न मानूँगा। फिर अपराध अगर है तो मेरा है। मेरी लड़की ने क्या अपराध किया है। मेरे अपराध के लिए मेरी लड़की को दण्ड देना सरासर न्याय-विरुद्ध है।

पत्नी—मगर करोगे क्या? कोई पंचायत क्यों नहीं करते?

सिनहा—पञ्चायत में भी तो वही बिरादरी के मुखिया लोग ही होंगे उनसे मुझे न्याय की आशा नहीं। वास्तव में इस तिरस्कार का कारण ईर्षा है। मुझे देखकर सब जलते हैं! और इसी बहाने से मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। मैं इन लोगों को खूब समझता हूँ।

पत्नी—मन की लालसा मन ही में रह गई। यह अरमान लिये संसार से जाना पड़ेगा। भगवान् की जैसी इच्छा। तुम्हारी बातों से मुझे डर लगता है कि मेरी बच्ची की न-जाने क्या दशा होगी। मगर तुमसे मेरी अन्तिम विनय यही है कि बिरादरी से बाहर न जाना, नहीं तो परलोक में भी मेरी आत्मा को शान्ति न मिलेगी। यही शोक मेरी जान ले रहा है। हाय मेरी बच्ची पर न-जाने क्या विपत्ति आनेवाली है।

यह कहते कहते मिसेज सिनहा की आँखों से आँसू बहने लगे। मिस्टर सिनहा ने उनको दिलासा देते हुए कहा—इसकी चिन्ता मत करो प्रिये, मेरा आशय केवल यह था कि ऐसे भाव मेरे मन में आया करते हैं। तुमसे सच कहता हूँ बिरादरी के अन्याय से कलेजा चलनी हो गया है।

पत्नी—बिरादरी को बुरा मत कहो। बिरादरी का डर न हो तो आदमी न-जाने क्या क्या उत्पात करे। बिरादरी को बुरा न कहो। (कलेजे पर हाथ रखकर) यहाँ बड़ा दर्द हो रहा है। यशोदा-नन्दन ने भी कोरा जवाब दे दिया ? किसी करवट चैन नहीं आता। क्या करूँ भगवान् !

सिनहा—डाक्टर को बुलाऊँ ?

पत्नी – तुम्हारा जी चाहे बुला लो, लेकिन मैं बचूँगी नहीं। जरा तिब्बी को बुला लो, प्यार कर लूँ। जी डूबा जाता है। मेरी बच्ची ! हाय मेरी बच्ची !

धिक्कार

(१)

ईरान और यूनान में घोर संग्राम हो रहा था। ईरानी दिन दिन बढ़ते जाते थे और यूनान के लिए संकट का सामना था। देश के सारे व्यवसाय बंद हो गये थे, हल की मुठिया पर हाथ रखनेवाले किसान तलवार की मुठिया पकड़ने के लिए मजबूर हो गये थे, डंडी तोलनेवाले भाले तौलते थे। सारा देश आत्म-रक्षा के लिए तैयार हो गया था। फिर भी शत्रु के क़दम दिन दिन आगे ही बढ़ते आते थे। जिस ईरान को यूनान कई बार कुचल चुका था, वही ईरान आज क्रोध के आवेग की भाँति सिर पर चढ़ा आता था। मर्द तो रणक्षेत्र में सिर कटा रहे थे और स्त्रियाँ दिन दिन की निराशाजनक ख़बरें सुनकर सूखी जाती थीं। क्योंकर लाज की रक्षा होगी? प्राण का भय न था, सम्पति का भय न था, भय था मर्याद का। विजेता गर्व से मतवाले हो होकर यूनानी ललनाओं की ओर घूरेंगे, उनके कोमल अंगों को स्पर्श करेंगे, उनको क़ैद कर ले जायेंगे! उस विपत्ति की कल्पना ही से इन लोगों के रोएँ खड़े हो जाते थे।

आख़िर जब हालत बहुत नाज़ुक हो गई तो कितने ही स्त्री-पुरुष मिलकर डेल्फ़ी के मन्दिर में गये और प्रश्न किया—देवी,

हमारे ऊपर देवतों की यह वक्र दृष्टि क्यों है? हमसे ऐसा कौनसा अपराध हुआ है? क्या हमने नियमों का पालन नहीं किया, कुरबानियाँ नहीं कीं, व्रत नहीं रक्खे? फिर देवतों ने क्यों हमारे सिरों से अपनी रक्षा का हाथ उठा लिया है।

पुजारिन ने कहा—देवतों की असीम कृपा भी देश को द्रोही के हाथ से नहीं बचा सकती। इस देश में अवश्य कोई न कोई द्रोही है। जब तक उसका वध न किया जायगा, देश के सिर से यह संकट न टलेगा।

"देवी, वह द्रोही कौन है?"

"जिस घर से रात को गाने की ध्वनि आती हो, जिस घर से दिन को सुगंध की लपटें आती हों, जिस पुरुष की आँखों में मद की लाली झलकती हो, वही देश का द्रोही है।"

लोगों ने द्रोही का परिचय पाने के लिए और भी कितने ही प्रश्न किये, पर देवी ने कोई उत्तर न दिया।

(२)

यूनानियों ने द्रोही की तलाश करनी शुरू की। किसके घर में से रात को गाने की आवाजें आती हैं? सारे शहर में संध्या होते स्यापा-सा छा जाता था। अगर कहीं आवाजें सुनाई देती थीं तो रोने की, हँसी और गाने की आवाज कहीं न सुनाई देती थी।

दिन को सुगन्ध की लपटें किस घर से आती हैं? लोग जिधर जाते थे उधर से दुर्गन्धि आती थी। गलियों में कूड़े के ढेर पड़े थे, किसे इतनी फुरसत थी कि घर की सफ़ाई करता, घर में

सुगन्ध जलाता; धोबियों का अभाव था, अधिकांश लड़ने चले गये थे, कपड़े तक न धुलते थे; इत्र-फुलेल कौन मलता।

किसकी आँखों में मद की लाली झलकती है? लाल आँखें दिखाई देती थीं, लेकिन यह मद की लाली न थीं, यह आँसुओं की लाली थी। मदिरा की दूकानों पर खाक उड़ रही थी। इस जीवन और मृत्यु के संग्राम में विलास की किसे सूझती। लोगों ने सारा शहर छान मारा लेकिन एक भी आँख ऐसी नज़र न आई जो मद से लाल हो।

कई दिन गुज़र गये। शहर में पल पल-भर पर रण-क्षेत्र से भयानक ख़बरें आती थीं और लोगों के प्राण सूखे जाते थे।

आधी रात का समय था। शहर में अंधकार छाया हुआ था, मानो श्मशान हो। किसी की सूरत न दिखाई देती थी। जिन नाट्यशालों में तिल रखने की जगह न मिलती थी वहाँ सियार बोल रहे थे, जिन बाज़ारों में मन चले जवान अस्त्र-शस्त्र सजाये ऐंठते फिरते थे वहाँ उल्लू बोल रहे थे, मन्दिरों में गाना होता था, न बजाना। प्रासादों में भी अंधकार छाया हुआ था।

एक बूढ़ा यूनानी, जिसका एकलौता लड़का लड़ाई के मैदान में था, घर से निकला और न-जाने किन विचारों की तरंग में देवी के मन्दिर की ओर चला। रास्ते में कहीं प्रकाश न था, क़दम क़दम पर ठोकरें खाता था, पर आगे बढ़ता चला जाता था। उसने निश्चय कर लिया था कि या तो आज देवी से विजय का वरदान लूँगा या उनके चरणों पर अपने को भेंट कर दूँगा।

(३)

सहसा वह चौंक पड़ा। देवी का मन्दिर आ गया था और उसके पीछे की ओर किसी घर से मधुर संगीत की ध्वनि आ रही थी। उसको आश्चर्य हुआ। इस निर्जन स्थान में कौन इस वक्त रंगरलियाँ मना रहा है। उसके पैरों में पर से लग गये, उड़कर मंदिर के पिछवाड़े जा पहुँचा।

उसी घर से जिसमें मंदिर की पुजारिन रहती थी गाने की आवाजें आती थीं। वृद्ध विस्मित होकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। चिराग़-तले अँधेरा! देवी के मंदिर के पिछवाड़े यह अंधेर?

बूढ़े ने द्वार से झाँका: एक सजे हुए कमरे में मोमी बत्तियाँ झाड़ों में जल रही थीं, साफ़-सुथरा फ़र्श बिछा हुआ था और एक आदमी मेज़ पर बैठा हुआ गा रहा था। मेज़ पर शराब की बोतल और प्यालियाँ रक्खी हुई थीं। दो गुलाम मेज़ के सामने हाथ में भोजन के थाल लिये खड़े थे जिनमें से मनोहर सुगंध की लपटें आ रही थीं।

बूढ़े यूनानी ने चिल्लाकर कहा—यही देश-द्रोही है, यही-देश-द्रोही है!

मन्दिर की दीवारों ने दुहराया—द्रोही है!

बाग़ीचे की तरफ़ से आवाज़ आई—द्रोही है!

मंदिर की पुजारिन ने घर में से सिर निकालकर कहा—हाँ, द्रोही है!

यह देश-द्रोही उसी पुजारिन का बेटा पासोनियस था। देश में रक्षा के जो उपाय सोचे जाते, शत्रुओं का दमन करने के लिए जो निश्चय किये जाते, उनकी सूचना वह ईरानियों को दे दियाकरता था। सेनाओं की प्रत्येक गति की खबर ईरानियों को मिल जाती थी और उन प्रयत्नों को विफल बनाने के लिए वे पहले से तैयार हो जाते थे। यही कारण था कि यूनानियों को जान लड़ा देने पर भी विजय न होती थी। इस देश-द्रोह के पुरस्कार में पासोनियस को मुहरों की थैलियाँ मिल जाती थीं। इसी कपट से कमाये हुए धन से वह भोग-विलास करता था। उस समय जब कि देश पर घोर संकट पड़ा हुआ था उसने अपने स्वदेश को अपनी वासनाओं के लिए बेच दिया था। अपने विलास के सिवा उसे और किसी बात को चिन्ता न थी, कोई मरे या जिये, देश रहे या जाय, उसकी बला से। केवल अपने कुटिल स्वार्थ के लिए देश की गरदन में गुलामी की बेड़ियाँ डलवाने पर तैयार था। पुजारिन अपने बेटे के दुराचरण से अनभिज्ञ थी, वह अपनी अँधेरी कोठरी से बहुत कम निकलती, वहीं बैठी जप-तप किया करती थी। परलोक-चिन्तन में उसे इहलोक की खबर न थी, मनेन्द्रियों ने बाहर की चेतना को शून्य-सा कर दिया था। वह इस समय भी कोठरी के द्वार बंद किये, देवी से अपने देश के कल्याण के लिए वन्दना कर रही थी कि सहसा उसके कानों में आवाज़ आई—यही द्रोही है, यही द्रोही है!

उसने तुरन्त द्वार खोलकर बाहर की ओर झाँका, पासोनियस के कमरे से प्रकाश की रेखाएँ निकल रही थीं, और उन्हीं रेखाओं पर संगीत की लहरें नाच रही थीं। उसके पैर-तले से ज़मीन-सी निकल गई, कलेजा धक से हो गया। ईश्वर! क्या मेरा बेटा ही देश-द्रोही है?

आप ही आप, किसी अंतःप्रेरणा से पराभूत होकर, वह चिल्ला उठी—हाँ, यही देश-द्रोही है!

(४)

यूनानी स्त्री-पुरुष झुंड के झुंड उमड़ पड़े और पासोनियस के द्वार पर खड़े होकर चिल्लाने लगे—यही देश-द्रोही है!

पासोनियस के कमरे की रोशनी ठंडी हो गई थी; संगीत भी बन्द था, लेकिन द्वार पर प्रतिक्षण नगरवासियों का समूह बढ़ता जाता था और रह रहकर सहस्रों कंठों से ध्वनि निकलती थी—यही देश-द्रोही है!

लोगों ने मशालें जलाईं, और अपने लाठी-डंडे सँभालकर मकान में घुस पड़े। कोई कहता था—सिर उतार लो। कोई कहता था—देवी के चरणों पर वलिदान कर दो। कुछ लोग उसे कोठे से नीचे गिरा देने पर आग्रह कर रहे थे।

पासोनियस समझ गया कि अब मुसीबत की घड़ी सिर पर आ गई। तुरन्त जीने से उतरकर नीचे की ओर भागा और कहीं शरण की आशा न देखकर देवी के मंदिर में जा घुसा।

अब क्या किया जाय। देवी के शरण जानेवाले को अभय-

दान मिल जाता था। परम्परा से यही प्रथा थी। मन्दिर में किसी की हत्या करना महापाप था।

लेकिन देश-द्रोही को इतने सस्ते कौन छोड़ता। भाँति भाँति के प्रस्ताव होने लगे—

"सुअर के हाथ पकड़कर बाहर खींच लो।"

"ऐसे देश-द्रोही का वध करने के लिए देवी हमें क्षमा कर देंगी।"

"देवी आप उसे क्यों नहीं निगल जातीं?"

"पत्थरों से मारो, पत्थरों से, आप निकलकर भागेगा।"

"निकलता क्यों नहीं रे कायर! वहाँ क्या मुँह में कालिख लगाकर बैठा हुआ है?"

रात-भर यही शोर मचा रहा और पासोनियस न निकला! आख़िर यह निश्चय हुआ कि मंदिर की छत खोदकर फेंक दी जाय और पासोनियस दोपहर की तेज़ धूप और रात की कड़ाके की सरदी में आप ही आप अकड़ जाय। बस फिर क्या था। आन की आन में लोगों ने मन्दिर की छत और कलस ढा दिये।

अभागा पासोनियस दिन-भर तेज़ धूप में खड़ा रहा। उसे ज़ोर की प्यास लगी लेकिन पानी कहाँ? भूख लगी पर खाना कहाँ? सारी ज़मीन तवे की भाँति जलने लगी लेकिन छाँह कहाँ? इतना कष्ट उसे जीवन-भर में न हुआ था। मछली की भाँति तड़पता था और चिल्ला चिल्लाकर लोगों को पुकारता था मगर वहाँ कोई उसकी पुकार सुननेवाला न था। बार बार क़समें

खाता था कि अब फिर मुझसे ऐसा अपराध न होगा लेकिन कोई उसके निकट न आता था। बार बार चाहता था कि दीवार से सिर टकराकर प्राण दे दे लेकिन यह आशा रोक देती थी कि शायद लोगों को मुझ पर दया आ जाय। वह पागलों की तरह ज़ोर ज़ोर से कहने लगा—मुझे मार डालो, मार डालो, एक क्षण में प्राण ले लो, इस भाँति जला जलाकर न मारो, ओ हत्यारो, तुमको ज़रा भी दया नहीं!

दिन बीता और रात - भयंकर रात - आई। ऊपर तारागण चमक रहे थे मानो उसकी विपत्ति पर हँस रहे हों। ज्यों ज्यों रात भीगती थी, देवी विकराल रूप धारण करती जाती थीं। कभी वह उसकी ओर मुँह खोलकर लपकतीं, कभी उसे जलती हुई आँखों से देखतीं। उधर क्षण क्षण सरदी बढ़ती जाती थी, पासोनियस के हाथ-पाँव अकड़ने लगे, कलेजा काँपने लगा, घुटनों में सिर रखकर बैठ गया और अपनी क़िसमत को रोने लगा; कुरते को खींचकर कभी पैरों को छिपाता, कभी हाथों को, यहाँ तक कि इस खींचा-तानी में कुरता भी फट गया। आधी रात जाते जाते बर्फ़ गिरने लगी। दोपहर को उसने सोचा था कि गरमी ही सबसे अधिक कष्टदायक है, अब इस ठंड के सामने उसे गरमी की तकलीफ़ भूल गई।

आख़िर शरीर में गरमी लाने के लिए उसे एक हिकमत सूझी। वह मंदिर में इधर-उधर दौड़ने लगा, लेकिन विलासी जीव था, ज़रा देर में हाँपकर गिर पड़ा।

(५)

प्रातःकाल लोगों ने किवाड़ खोले तो पासोनियस को भूमि पर पड़े देखा। मालूम होता था, उसका शरीर अकड़ गया है। बहुत चीख़ने-चिल्लाने पर उसने आँखें खोलीं पर जगह से हिल न सका। कितनी दयनीय दशा थी, किन्तु किसी को उस पर दया न आई। यूनान में देश-द्रोह सबसे बड़ा अपराध था और द्रोही के लिए कहीं क्षमा न थी, कहीं दया न थी।

एक—अभी मरा नहीं है!

दूसरा—द्रोहियों को मौत नहीं आती!

तीसरा—पड़ा रहने दो, मर जायगा!

चौथा—मक्र किये हुए है!

पाँचवाँ—अपने किये की सज़ा पा चुका, अब छोड़ देना चाहिए!

सहसा पासोनियस उठ बैठा और उद्दण्ड भाव से बोला—कौन कहता है कि इसे छोड़ देना चाहिए! नहीं, मुझे मत छोड़ना वरना पछताओगे, मैं स्वार्थी हूँ, विषय-भोगी हूँ, मुझ पर भूलकर भी विश्वास न करना। आह! मेरे कारण तुम लोगों को क्या क्या झेलना पड़ा, इसे सोचकर मेरा जी चाहता है कि अपनी इन्द्रियों को जलाकर भस्म कर दूँ। मैं अगर सौ बार जन्म लेकर इस पाप का प्रायश्चित्त करूँ तो भी मेरा उद्धार न होगा। तुम भूलकर भी मेरा विश्वास न करो। मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं। विलास के प्रेमी सत्य का पालन नहीं कर सकते।

मैं अब भी आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ, मुझे ऐसे ऐसे गुप्त रहस्य मालूम हैं जिन्हें जानकर आप ईरानियों का संहार कर सकते हैं। लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है और आपसे भी यही कहता हूँ कि मुझ पर विश्वास न कीजिए।

आज रात को देवी की मैंने सच्चे दिल से वन्दना की है और उन्होंने मुझे ऐसे यन्त्र बताये हैं जिनसे हम शत्रुओं को परास्त कर सकते हैं, ईरानियों के बढ़ते हुए दल को आज भी आन की आन में उड़ा सकते हैं। लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है, मैं यहाँ से बाहर निकलकर इन बातों को भूल जाऊँगा, बहुत संशय है कि फिर ईरानियों की गुप्त सहायता करने लगूँ, इस लिए मुझ पर विश्वास न कीजिए।

एक यूनानी—देखो देखो, क्या कहता है?

दूसरा—सच्चा आदमी मालूम होता है!

तीसरा—अपने अपराधों को आप स्वीकार कर रहा है।

चौथा—इसे क्षमा कर देना चाहिए, और वह सब बातें पूछ लेनी चाहिएँ।

पाँचवाँ—देखो, यह नहीं कहता कि मुझे छोड़ दो, हमको बार बार याद दिलाता जाता है कि मुझ पर विश्वास न करो!

छठा—रात-भर के कष्ट ने होश ठंडे कर दिये, अब आँखें खुली हैं!

पासोनियस—क्या तुम लोग मुझे छोड़ने की बातचीत कर रहे हो? मैं फिर कहता हूँ मैं विश्वास के योग्य नहीं हूँ। मैं द्रोही

हूँ। मुझे ईरानियों के बहुतसे भेद मालूम हैं, एक बार उनकी सेना में पहुँच जाऊँ तो उनका मित्र बनकर सर्वनाश कर दूँ, पर मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है।

एक यूनानी—धोखेबाज़ इतनी सच्ची बात नहीं कह सकता!

दूसरा—पहले स्वार्थान्ध हो गया था पर अब आँखें खुली हैं!

तीसरा—देश-द्रोही से भी अपने मतलब की बातें मालूम कर लेने में कोई हानि नहीं है। अगर यह अपने वचन पूरे करे तो हमें इसे छोड़ देना चाहिए।

चौथा—देवी की प्रेरणा से इसकी यह कायापलट हुई है।

पाँचवाँ—पापियों में भी आत्मा का प्रकाश रहता है और कष्ट पाकर जाग्रत् हो जाता है। यह समझना कि जिसने एक बार पाप किया वह फिर कभी पुण्य कर ही नहीं सकता, मानव-चरित्र के एक प्रधान तत्त्व का अपवाद करना है।

छठा—हम इसको यहाँ से गाते-बजाते ले चलेंगे। जन-समूह को चकमा देना कितना आसान है। जन सत्तावाद का सबसे निर्बल अङ्ग यही है जनता तो नेक और बद की तमीज़ नहीं रखती, उस पर धूर्तों, रँगे सियारों का जादू आसानी से चल जाता है। अभी एक दिन पहले जिस पासोनियस की गरदन पर तलवार चलाई जा रही थी। उसी को जलूस के साथ मन्दिर से निकालने की तैयारियाँ होने लगीं, क्योंकि वह धूर्त था और जानता था कि जनता की कील क्योंकर घुमाई जा सकती है।

एक स्त्री—गाने-बजानेवालों को बुलाओ, पासोनियस शरीफ़ है।

दूसरी—हाँ हाँ, पहले चलकर उससे क्षमा माँगो, हमने उसके साथ ज़रूरत से ज्यादा सख़्ती की।

पासोनियस—आप लोगों ने पूछा होता तो मैं कल ही सारी बातें आपको बता देता। तब आपको मालूम होता कि मुझे मार डालना उचित है या जीता रखना।

कई स्त्री-पुरुष—हाय हाय! हमसे बड़ी भूल हुई। हमारे सच्चे पासोनियस!

सहसा एक वृद्धा स्त्री किसी तरफ़ से दौड़ती हुई आई और मन्दिर के सबसे ऊँचे ज़ीने पर खड़ी होकर बोली—तुम लोगों को क्या हो गया है? यूनान के बेटे, आज इतने ज्ञानशून्य हो गये हैं कि झूठे और सच्चे में विवेक नहीं कर सकते! तुम पासोनियस पर विश्वास करते हो? जिस पासोनियस ने सैकड़ों स्त्रियों और बालकों को अनाथ कर दिया, सैकड़ों घरों में कोई दिया जलाने-वाला न छोड़ा, हमारे देवतों का, हमारे पुरुषों का घोर अपमान किया उसकी दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातों पर तुम इतने फूल उठे। याद रक्खो, अब की पासोनियस बाहर निकला तो फिर तुम्हारी कुशल नहीं, यूनान पर ईरान का राज्य होगा और यूनानी ललनाएँ ईरानियों की कुदृष्टि का शिकार बनेंगी। देवी की आज्ञा है कि पासोनियस फिर बाहर न निकलने पाये। अगर तुम्हें अपना देश प्यारा है, अपने पुरुखों का नाम प्यारा है, अपनी माताओं और बहनों की आबरू प्यारी है तो मंदिर के द्वार को चुन दो जिसमें उस देश-द्रोही को फिर बाहर निकलने और तुम लोगों को

बहकाने का मौक़ा न मिले। यह देखो पहला पत्थर मैं अपने हाथों से रखती हूँ।

लोगों ने विस्मित होकर देखा—यह मन्दिर की पुजारिन और पासोनियस की माता थी।

दम के दम में पत्थरों के ढेर लग गये और मन्दिर का द्वार चुन दिया गया। पासोनियस भीतर दाँत पीसता रह गया।

वीर माता, तुम्हें धन्य है! ऐसी ही माताओं से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देश-हित के सामने मातृ-स्नेह की धूल-बराबर भी परवा नहीं करतीं। उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता।

शूद्रा

(१)

माँ और बेटी एक झोपड़ी में गाँव के उस सिरे पर रहती थीं। बेटी बाग से पत्तियाँ बटोर लाती, माँ भाड़ झोंकती। यही उनकी जीविका थी। सेर-दो सेर अनाज मिल जाता था, खाकर पड़ रहती थीं। माता विधवा थी, बेटी क्वाँरी; घर में और कोई आदमी न था। माँ का नाम गंगा था, बेटी का गौरा।

गंगा को कई साल से यह चिन्ता लगी हुई थी कि कहीं गौरा की सगाई हो जाय, लेकिन कहीं बात पक्की न होती थी। अपने पति के मर जाने के बाद गंगा ने कोई दूसरा घर न किया था, न कोई दूसरा धंधा करती थी, इससे लोगों को संदेह हो गया था कि आखिर इसका गुज़र कैसे होता है? और लोग तो छाती फाड़ फाड़ काम करते हैं, फिर भी पेटभर अन्न मयस्सर नहीं होता। यह स्त्री कोई धंधा नहीं करती, फिर भी माँ बेटी आराम से रहती हैं, किसी के सामने हाथ नहीं फैलातीं। इसमें कुछ न कुछ रहस्य है। धीरे धीरे यह संदेह और भी दृढ़ हो गया, और वह अब तक जीवित था। बिरादरी में कोई गौरा से सगाई करने पर राजी न

से अधिक उसका क्षेत्र नहीं होता। इस लिए एक दूसरे के गुण-दोष किसी से छिपे नहीं रहते, न उन पर परदा ही डाला जा सकता है।

इस भ्रान्ति को शान्त करने के लिए माँ ने बेटी के साथ कई तीर्थयात्राएँ कीं। उड़ीसा तक हो आई, लेकिन संदेह न मिटा। गौरा युवती थी, सुन्दरी थी, पर उसे किसी ने कुएँ पर या खेतों में हँसते-बोलते नहीं देखा। उसकी निगाह कभी ऊपर उठती ही न थी। लेकिन ये बातें भी संदेह को और पुष्ट करती थीं। अवश्य कोई न कोई रहस्य है। कोई युवती इतनी निष्ठुर, इतनी सती नहीं हो सकती। कुछ गुप-चुप की बात अवश्य है!

यों ही दिन गुजरते जाते थे। बुढ़िया दिन दिन चिन्ता से घुल रही थी उधर सुन्दरी की मुख-छवि दिन दिन निखरती जाती थी। कली खिलकर फूल हो रही थी।

(२)

एक दिन एक परदेशी गाँव से होकर निकला। दस-बारह कोस से आ रहा था। नौकरी की खोज में कलकत्ते जा रहा था। रात हो गई। किसी कहार का घर पूछता हुआ गंगा के घर आया। गंगा ने उसका खूब आदर-सत्कार किया, उसके लिए गेहूँ का आटा लाई, घर से बरतन निकालकर दिये। कहार ने पकाया, खाया, लेटा, बातें होने लगीं सगाई की चरचा छिड़ गई। कहार जवान था, गौरा पर निगाह पड़ी, उसका रंग-ढंग देखा, उसकी सरल छवि आँखों में खुब गई। सगाई करने पर राजी हो गया। लौट-

गाँव के बजाज से कपड़े लिये और दो-चार भाई-बंदों के साथ सगाई करने आ पहुँचा। सगाई हो गई, यहीं रहने लगा। गंगा बेटी और दामाद को आँखों से दूर न कर सकती थी।

किन्तु दस ही पाँच दिनों में मँगरू के कानों में इधर-उधर की बातें पड़ने लगीं। बिरादरी ही के नहीं, अन्य जातिवाले भी उसके कान भरने लगे। ये बातें सुन सुनकर मँगरू पछताता था कि नाहक़ यहाँ फँसा। पर गौरा को छोड़ने का ख़याल करके उसका दिल काँप उठता था।

एक महीने के बाद मँगरू अपनी बहन के गहने लौटाने गया। खाना खाने के समय उसका बहनोई उसके साथ भोजन करने न बैठा। मँगरू को कुछ संदेह हुआ, बहनोई से बोला—तुम क्यों नहीं आते?

बहनोई ने कहा—तुम खा लो, मैं फिर खा लूँगा।

मँगरू—बात क्या है? तुम खाने क्यों नहीं उठते?

बहनोई—जब तक पंचायत न होगी, मैं तुम्हारे साथ कैसे खा सकता हूँ। तुम्हारे लिए बिरादरी तो न छोड़ दूँगा। किसी से पूछा न गूछा, जाकर एक हरजाई से सगाई कर ली!

मँगरू चौके पर से उठ आया, मिरजई पहनी और ससुराल चला आया। बहन खड़ी रोती रह गई!

उसी रात को वह किसी से कुछ कहे-सुने बग़ैर, गौरा को छोड़कर कहीं चला गया। गौरा नींद में मग्न थी। उसे क्या खबर

थी कि वह रत्न जो मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, मुझे सदा के लिए छोड़े चला जा रहा है !

(३)

कई साल बीत गये। मँगरू का कुछ पता न चला। कोई पत्र तक न आया, पर गौरा बहुत प्रसन्न थी। वह माँग में सेंदुर डालती, रंग-बिरंग के कपड़े पहनती और अधरों पर मिस्सी के धड़े जमाती। मँगरू भजनों की एक पुरानी किताब छोड़ गया था। उसे कभी कभी पढ़ती और गाती। मँगरू ने उसे हिन्दी सिखा दी थी। टटोल टटोलकर भजन पढ़ लेती थी।

पहले वह अकेली बैठी रहती थी। गाँव की और स्त्रियों के साथ बोलते-चालते उसे शरम आती थी। उसके पास वह वस्तु न थी जिस पर दूसरी स्त्रियाँ गर्व करती थीं। सभी अपने अपने पति की चरचा करतीं। गौरा के पति कहाँ था? वह किसकी बातें करती? अब उसके भी पति था। अब वह अन्य स्त्रियों के साथ इस विषय पर बात-चीत करने की अधिकारिणी थी। वह भी मँगरू की चरचा करती—मँगरू कितना स्नेहशील है, कितना सज्जन, कितना वीर! पति-चरचा से उसे कभी तृप्ति ही न होती थी।

स्त्रियाँ पूछतीं—मँगरू तुझे छोड़कर क्यों चले गये?

गौरा कहती—क्या करते! मर्द कभी ससुराल में पड़ा रहता है, देश-परदेश में निकलकर चार पैसे कमाना ही तो मर्दों का काम है, नहीं तो मान-मरजाद का निबाह कैसे हो?

जब कोई पूछता—चिट्ठी-पत्री क्यों नहीं भेजते? तो हँसकर

कहती—अपना पता-ठिकाना बताते डरते हैं। जानते हैं न कि गौरा आकर सिर पर सवार हो जायगी। सच कहती हूँ उनका पता-ठिकाना मालूम हो जाय तो यहाँ मुझसे एक दिन भी न रहा जाय। वह बहुत अच्छा करते हैं कि मेरे पास चिट्ठी-पत्री नहीं भेजते। बेचारे परदेश में कहाँ गिरस्ती सँभालते फिरेंगे।

एक दिन किसी सहेली ने कहा—हम न मानेंगे, तुझसे जरूर मँगरू से झगड़ा हो गया, नहीं तो विना कुछ कहे-सुने क्यों चले जाते।

गौरा ने हँसकर कहा—बहन, अपने देवता से भी कोई झगड़ा करता है। वह मेरे मालिक हैं, भला मैं उनसे झगड़ा करूँगी? जिस दिन झगड़े की नौबत आयेगी कहीं डूब मरूँगी। मुझसे कहके जाने पाते? मैं उनके पैरों से लिपट न जाती!

(४)

एक दिन कलकत्ते से एक आदमी आकर गंगा के घर ठहरा। पास ही के किसी गाँव में अपना घर बताया। कलकत्ते में वह मँगरू के पड़ोस ही में रहता था। मँगरू ने उससे गौरा को अपने साथ लाने को कहा था। दो साड़ियाँ और राह-खर्च के लिए कुछ रुपये भी भेजे थे। गौरा फूली न समाई। बूढ़े ब्राह्मण के साथ चलने को तैयार हो गई। चलते वक्त वह गाँव की सब औरतों से गले मिली। गंगा उसे स्टेशन तक पहुँचाने गई। सब कहते थे—बेचारी लड़की के भाग्य जग गये, नहीं तो यहाँ कुढ़ कुढ़कर मर जाती।

रास्ते-भर गौरा सोचती जाती थी—न-जाने वह कैसे हो गये होंगे। अब तो मूँछें अच्छी तरह निकल आई होंगी। परदेश में आदमी सुख से रहता है। देह भर आई होगी। बाबू साहब हो गये होंगे। मैं पहले दो-तीन दिन उनसे बोलूँगी ही नहीं। फिर पूछूँगी, तुम मुझे छोड़कर क्यों चले आये? अगर किसी ने मेरे बारे में कुछ बुरा-भला कहा ही था तो तुमने उसका विश्वास क्यों कर लिया। तुम अपनी आँखों से न देखकर दूसरों के कहने पर क्यों गये? मैं भली हूँ, या बुरी हूँ, हूँ तो तुम्हारी, तुमने मुझे इतने दिनों रुलाया क्यों? तुम्हारे बारे में अगर इसी तरह कोई मुझसे कहता तो क्या मैं तुमको छोड़ देती? जब तुमने मेरी बाँह पकड़ ली तो तुम मेरे हो गये। फिर तुममें लाख ऐब हो मेरी बला से, चाहे तुम तुर्क ही क्यों न हो जाओ, मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती, तुम क्यों मुझे छोड़कर भागे? क्या समझते थे, भागना सहज है? आख़िर झक मारकर बुलाया कि नहीं? कैसे न बुलाते? मैंने तो तुम्हारे ऊपर दया की कि चली आई, नहीं कह देती कि मैं ऐसे निर्दयी के पास नहीं जाती, तो तुम आप दौड़े आते। तप करने से तो देवता भी मिल जाते हैं, आकर सामने खड़े हो जाते हैं, तुम कैसे न आते? वह बार बार उद्विग्न हो होकर बूढ़े ब्राह्मण से पूछती—अब कितनी दूर है? क्या धरती के ओर पर रहते हैं क्या? और भी कितनी ही बातें वह पूछना चाहती थी लेकिन संकोच-वश न पूछ सकती थी। मन ही मन अनुमान करके अपने को संतुष्ट कर लेती थी। उनका मकान बड़ा-सा

होगा। शहर में लोग पक्के घरों में रहते हैं। जब उनका साहब इतना मानता है तो नौकर भी होगा। मैं नौकर को भगा दूँगी। मैं दिन-भर पड़े पड़े क्या किया करूँगी ?

बीच बीच में उसे घर की याद भी आ जाती थी। बेचारी अम्माँ रोती होंगी। अब उन्हें घर का सारा काम आप ही करना पड़ेगा। न-जाने बकरियों को चराने ले जाती हैं या नहीं। बेचारी दिन-भर मेंमें करती होंगी। मैं अपनी बकरियों के लिए महीने महीने रुपये भेजूँगी। जब कलकत्ते से लौटूँगी तो सबके लिए साड़ियाँ लाऊँगी। तब मैं इस तरह थोड़े ही लौटूँगी। मेरे साथ बहुत-सा असबाब होगा। सबके लिए कोई न कोई सौगात लाऊँगी तब तक तो बहुत-सी बकरियाँ हो जायँगी।

यही सुख-स्वप्न देखते देखते गौरा ने सारा रास्ता काट दिया। पगली क्या जानती थी कि मेरे मन कुछ और है, कर्ता के मन कुछ और। क्या जानती थी कि बूढ़े ब्राह्मणों के वेष में भी पिशाच होते हैं। मन की मिठाई खाने में मग्न थी!

(५)

तीसरे दिन गाड़ी कलकत्ते पहुँची। गौरा की छाती धड़धड़ करने लगी। वह यहीं कहीं खड़े होंगे। अब आते ही होंगे। यह सोचकर उसने घूँघट निकाल लिया और सँभल बैठी। मगर मँगरू वहाँ न दिखाई दिया। बूढ़ा ब्राह्मण बोला—मँगरू तो यहाँ नहीं दिखाई देता, मैं चारों ओर छान आया। शायद किसी काम में लग गया होगा, आने की छुट्टी न मिली होगी, मालूम भी तो न

था कि हम लोग किस गाड़ी से आ रहे हैं। उनकी राह क्यों देखें, चलो डेरे पर चलें।

दोनों गाड़ी पर बैठकर चले। गौरा कभी ताँगे पर न सवार हुई थी। उसे गर्व हो रहा था कि कितने ही बाबू लोग पैदल जा रहे हैं, मैं ताँगे पर बैठी हूँ।

एक क्षण में गाड़ी मँगरू के डेरे पर पहुँच गई। एक विशाल भवन था, अहाता साफ़-सुथरा सायबान में फूलों के गमले रक्खे हुए थे। ऊपर चढ़ने के लिए संगमरमर की सीढ़ी थी। गौरा ब्राह्मण के साथ ऊपर चढ़ने लगी। विस्मय, आनंद और आशा से उसे अपनी सुधि ही न थी। सीढ़ियों पर चढ़ते चढ़ते पैर दुखने लगे। यह सारा महल उनका है! किराया बहुत देना पड़ता होगा। रुपये को तो कुछ समझते ही नहीं। उसका हृदय धड़क रहा था कि कहीं मँगरू ऊपर से उतरते आ न रहे हों। सीढ़ी पर भेंट हो गई तो मैं क्या करूँगी। भगवान् करे वह पड़े सोते हों, तब मैं जगाऊँ और वह मुझे देखते ही हड़बड़ाकर उठ बैठें। आख़िर सीढ़ियों का अंत हुआ। ऊपर एक कमरे में गौरा को ले जाकर ब्राह्मण देवता ने बिठा दिया। यही मँगरू का डेरा था। मगर मँगरू यहाँ भी नदारद। कोठरी में केवल एक खाट पड़ी हुई थी। एक किनारे दो-चार बरतन रक्खे हुए थे। यही उनकी कोठरी है! तो मकान किसी दूसरे का है, उन्होंने यह कोठरी किराये पर ली होगी। देखती हूँ चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ है, मालूम होता है रात को बाज़ार में पूरियाँ खाकर सो रहे होंगे। यही उनके सोने की

खाट है। एक किनारे घड़ा रक्खा हुआ था। गौरा का मारे प्यास के तालू सूख रहा था। घड़े से पानी उँडेलकर पिया। एक किनारे एक झाड़ू रक्खा हुआ था। गौरा रास्ते की थकी थी, पर प्रेमोल्लास में थकन कहाँ? उसने कोठरी में झाड़ू लगाया, बरतनों को धो धोकर एक जगह रक्खा। कोठरी की एक एक वस्तु, यहाँ तक कि उसकी फ़र्श और दीवारों में उसे आत्मीयता की झलक दिखाई देती थी। उस घर में भी, जहाँ उसने अपने जीवन के २५ वर्ष काटे थे, उसे अधिकार का ऐसा गौरवयुक्त आनन्द न प्राप्त हुआ था।

मगर उस कोठरी में बैठे बैठे उसे संध्या हो गई और मँगरू का कहीं पता नहीं। अब छुट्टी मिली होगी। साँझ को सब जगह छुट्टी होती है। अब वह आ रहे होंगे। मगर बूढ़े बाबा ने उनसे कह तो दिया ही होगा, क्या वह अपने साहब से थोड़ी देर की छुट्टी न ले सकते थे? कोई बात होगी, तभी तो नहीं आये!

अँधेरा हो गया। कोठरी में दीपक न था। गौरा द्वार पर खड़ी पति की बाट देख रही थी। जीने पर बहुतसे आदमियों के चढ़ने-उतरने की आहट मिलती थी, बार बार गौरा को मालूम होता था, वह आ रहे हैं, पर इधर कोई न आता था।

९ बजे बूढ़े बाबा आये। गौरा ने समझा मँगरू हैं। झपटकर कोठरी के बाहर निकल आई। देखा तो ब्राह्मण। बोली—वह कहाँ रह गये!

बूढ़ा—उनकी तो यहाँ से बदली हो गई। दफ़तर में गया था

तो मालूम हुआ कि वह कल अपने साहब के साथ यहाँ से कोई ८ दिन की राह पर चले गये। उन्होंने साहब से बहुत कुछ हाथ-पैर जोड़े कि मुझे १० दिन की मुहलत दे दीजिए, लेकिन साहब ने एक न मानी। मँगरू यहाँ लोगों से कह गये हैं कि घर के लोग आयें तो मेरे पास भेज देना। अपना पता दे गये हैं। कल मैं तुम्हें यहाँ से जहाज़ पर बैठा दूँगा उस जहाज़ पर हमारे देश के और भी बहुतसे आदमी होंगे, इस लिए मार्ग में कोई कष्ट न होगा।

गौरा ने पूछा—कै दिन में जहाज़ पहुँचेगा ?

बूढ़ा—८-१० दिन से कम न लगेगा, मगर घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हें किसी बात की तकलीफ़ न होगी।

६)

अब तक गौरा को अपने गाँव लौटने की आशा थी। कभी न कभी वह अपने पति को वहाँ अवश्य खींच ले जायगी। लेकिन जहाज़ पर बैठकर उसे ऐसा मालूम हुआ कि अब फिर माता को न देखूँगी, फिर गाँव के दर्शन न होंगे, देश से सदा के लिए नाता टूट रहा है। वह देर तक घाट पर खड़ी रोती रही, जहाज़ और समुद्र देखकर उसे भय हो रहा था, हृदय दहला जाता था।

शाम को जहाज़ खुला। उस समय गौरा का हृदय एक अलक्ष्य भय से चंचल हो उठा। थोड़ी देर के लिए नैराश्य ने उस पर अपना आतंक जमा दिया। न-जाने किस देश ज़ा रही हूँ, उनसे वहाँ भेट भी होगी या नहीं. उन्हें कहाँ खोजती फिरूँगी

कोई पता-ठिकाना भी तो नहीं मालूम। बार बार पछताती कि एक दिन पहले क्यों न चली आई कलकत्ते में भेट हो जाती तो मैं उन्हें वहाँ कभी न जाने देती।

जहाज़ पर और भी कितने ही मुसाफ़िर थे। कुछ स्त्रियाँ भी थीं। उनमें बराबर गाली-गलौज होती रहती थी, इस लिए गौरा को उनसे बातें करने को इच्छा न होती थी। केवल एक स्त्री उदास दिखाई देती थी रंग-ढंग से वह किसी भले घर की स्त्री मालूम होती थी। गौरा ने उससे पूछा—तुम कहाँ जाती हो बहन? उस स्त्री की बड़ी बड़ी आँखें सजल हो गईं। बोली—कहाँ बताऊँ बहन, कहाँ जा रही हूँ! जहाँ भाग्य लिये जाता है वहीं जा रही हूँ। जहाँ जाने की स्वप्न में भी कल्पना न थी, वहीं जा रही हूँ। तुम कहाँ जाती हो?

गौरा—मैं तो अपने मालिक के पास जा रही हूँ। जहाँ यह जहाज़ रुकेगा वहीं वह नौकर हैं मैं कल आ जाती तो उनसे कलकत्ते में भेट हो जाती। आने में देर हो गई। क्या जानती थी कि वह इतनी दूर चले जायँगे नहीं क्यों देर करती!

स्त्री—अरे बहन, कहीं तुम्हें भी तो कोई बहकाकर नहीं लाया है? तुम घर से किसके साथ आई हो?

गौरा—मेरे मालिक ने तो कलकत्ता से आदमी भेजकर मुझे बुलाया था।

स्त्री—वह आदमी तुम्हारी जान-पहचान का था?

गौरा—नहीं, उसी तरफ़ का एक बूढ़ा ब्राह्मण था!

स्त्री—वही लम्बा-सा दुबला-पतला लकलक बुड्ढा, जिसकी एक आँख में फूली पड़ी हुई है ?

गौरा—हाँ हाँ वही, क्या तुम उसे जानती हो ?

स्त्री—उसी दुष्ट ने तो मेरा भी सर्वनाश किया है। ईश्वर करे उसकी सातों पुश्तें नरक भोगें, उसका निर्वंश हो जाय, कोई पानी देनेवाला न रहे, कोढ़ी होकर मरे। मैं अपना वृत्तान्त सुनाऊँ तो तुम समझोगी झूठी है। किसी को विश्वास न आयेगा। क्या कहूँ, बस यही समझ लो कि इसके कारण मैं न घर की रह गई न घाट की। किसी को मुँह नहीं दिखा सकती। मगर जान तो बड़ी प्यारी होती है। मिरिच के देश जा रही हूँ कि वहीं मेहनत-मजूरी करके जीवन के दिन काटूँ।

गौरा के प्राण नहों में समा गये। मालूम हुआ जहाज़ अथाह जल में डूबा जा रहा है। समझ गई कि बूढ़े ब्राह्मण ने दग़ा की! अपने गाँव में सुना करती थी कि ग़रीब लोग मिरिच में भरती होने जाया करते हैं। मगर जो वहाँ जाता है फिर नहीं लौटता। हा भगवान्, तुमने मुझे किस पाप का यह दण्ड दिया ? बोली—बहन, यह सब क्यों लोगों को इस तरह छलकर मिरिच भेजते हैं ?

स्त्री—रुपये के लोभ से, और किस लिए। सुनती हूँ आदमी पीछे इन सभों को कुछ रुपये मिलते हैं।

गौरा—तो बहन, वहाँ हमें क्या करना पड़ेगा ?

स्त्री—मजूरी।

गौरा सोचने लगी अब क्या करूँ। वह आशा-नौका, जिस

पर बैठी हुई वह चली जा रही थी, टूट गई थी, और अब समुद्र की लहरों के सिवा उसकी रक्षा करनेवाला कोई न था। जिस आधार पर उसने अपना जीवन-भवन बनाया था वह जल-मग्न हो गया। अब उसके लिए जल के सिवा और कहाँ आश्रय है। उसको अपनी माता की, अपने घर की, अपने गाँव की, सहेलियों की याद आई और ऐसी घोर मर्मवेदना होने लगी मानो कोई सर्प अंतस्तल में बैठा हुआ बार बार डस रहा हो। भगवान्! अगर मुझे यही यातना देनी थी तो तुमने मुझे जन्म ही क्यों दिया था। तुम्हें दुखिया पर दया नहीं आती! जो पिसे हुए हैं उन्हीं को पीसते हो! करुण स्वर से बोली—तो अब क्या करना होगा बहन!

स्त्री—यह तो वहाँ पहुँचकर मालूम होगा। अगर मजूरी ही करनी पड़े तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो मैंने निश्चय कर लिया है कि या तो उसी के प्राण ले लूँगी या अपने ही प्राण दे दूँगी।

यह कहते कहते उसे अपना वृत्तान्त सुनाने की वह उत्कट इच्छा हुई, जो दुखियों को हुआ करती है। बोली—मैं बड़े घर की बेटी और उससे भी बड़े घर की बहू हूँ, पर अभागिनी! विवाह के तीसरे साल पतिदेव का देहान्त हो गया। चित्त की कुछ ऐसी दशा हो गई कि नित्य मालूम होता, वह मुझे बुला रहे हैं। पहले तो आँख झपकते ही उनकी मूर्ति सामने आ जाती थी, लेकिन फिर तो यह दशा हो गई कि जाग्रत् दशा में भी रह रहकर

उनके दर्शन होने लगे बस यही जान पड़ता कि वह साक्षात् खड़े बुला रहे हैं। किसी से शर्म के मारे कहती न थी, पर मन में यह शंका होती थी कि जब उनका देहावसान हो गया है तो वह मुझे दिखाई कैसे देते हैं? मैं इसे भ्रान्ति समझ कर चित्त को शान्त न कर सकती थी। मन कहता था जो वस्तु प्रत्यक्ष दिखाई देती है, वह मिल क्यों नहीं सकती। केवल वह ज्ञान चाहिए। साधु-महात्माओं के सिवा ज्ञान और कौन दे सकता है? मेरा तो अब भी विश्वास है कि ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनसे हम मरे प्राणियों से बातचीत कर सकते हैं, उनको स्थूल रूप में देख सकते हैं। महात्माओं की खोज में रहने लगी। मेरे यहाँ अकसर साधु-संत आते रहते थे, उनसे इस विषय पर एकान्त में बातें किया करती थी, पर वे लोग सदुपदेश देकर मुझे टाल देते थे। मुझे सदुपदेशों की ज़रूरत न थी। मैं वैधव्य-धर्म खूब जानती थी। मैं तो वह ज्ञान चाहती थी जो जीवन और मरण के बीच का परदा उठा दे। तीन साल तक मैं इसी खोज में लगी रही। दो महीने होते हैं, यही बूढ़ा ब्राह्मण संन्यासी बना हुआ मेरे यहाँ जा पहुँचा। मैंने इससे भी वही भिक्षा माँगी। इस धूर्त ने कुछ ऐसा माया-जाल फैलाया कि मैं आँखें रहते हुए भी, फँस गई। अब सोचती हूँ तो अपने ही ऊपर आश्चर्य होता है कि मुझे उसकी बातों पर इतना विश्वास कैसे हुआ मैं पति-दर्शन के लिए सब कुछ झेलने को, सब कुछ करने को तैयार थी। इसने मुझे रात को अपने पास बुलाया। मैं घरवालों से पड़ोसिन के घर जाने का बहाना

करके इसके पास गई। एक पीपल के नीचे इसकी धुईं जल रही थी। उस विमल चाँदनी में यह धूर्त जटाधारी ज्ञान और योग का देवता-सा मालूम होता था। मैं आकर धुईं के पास खड़ी हो गई। उस समय यदि बाबाजी मुझे आग में कूद पड़ने को आज्ञा देते तो मैं तुरंत कूद पड़ती। इसने मुझे बड़े प्रेम से बैठाया और मेरे सिर पर हाथ रखकर न-जाने क्या कर दिया कि मैं बेसुध हो गई। फिर मुझे कुछ नहीं मालूम कि मैं कहाँ गई, क्या हुआ। जब मुझे होश आया तो मैं रेल पर सवार थी। जी में आया चिल्लाऊँ, पर यह सोचकर कि अब अगर गाड़ी रुक भी गई, और मैं उतर भी पड़ी तो घर में घुसने न पाऊँगी, मैं चुपचाप बैठी रह गई। मैं परमात्मा की दृष्टि में निर्दोष थी, पर संसार की दृष्टि में तो कलंकित हो चुकी थी। रात को किसी युवती का घर से निकल जाना कलंकित करने के लिए काफ़ी था। जब मालूम हो गया कि ये सब मुझे मिर्च के टापू में भेज रहे हैं तो मैंने ज़रा भी आपत्ति नहीं की। मेरे लिए अब सारा संसार एक-सा है। जिसका संसार में कोई न हो उसके लिए देश-परदेश दोनों बराबर हैं। हाँ, यह पक्का निश्चय कर चुकी हूँ कि मरते दम तक अपने सत् की रक्षा करूँगी। विधि के हाथ में मृत्यु से बढ़कर कोई यातना नहीं। विधवा के लिए मृत्यु का क्या भय! उसका तो जीना और मरना दोनों बराबर है। बल्कि मर जाने से जीवन की विपत्तियों का तो अंत हो जायगा।

गौरा ने सोचा, इस स्त्री में कितना धैर्य और साहस है। फिर

मैं क्यों इतनी कातर और निराश हो रही हूँ। जब जीवन की अभिलाषाओं का अंत हो गया तो जीवन के अंत का क्या डर। बोली—बहन, हम और तुम एक ही जगह रहेंगी। मुझे तो अब तुम्हारा ही भरोसा है।

स्त्री ने कहा—ईश्वर पर भरोसा रक्खो और मरने से मत डरो।

सघन अन्धकार छाया हुआ था। ऊपर काला आकाश था, नीचे काला जल। गौरा आकाश की ओर ताक रही थी, उसकी संगिनी जल की ओर। उसके सामने आकाश के कुसुम थे, इसके सामने अनन्त, अखंड, अपार अन्धकार था!

जहाज़ से उतरते ही एक आदमी ने यात्रियों के नाम लिखने शुरू किये। उसका पहनावा तो अँगरेजी था पर वह बातचीत से हिन्दुस्तानी मालूम होता था। गौरा सिर झुकाये अपनी संगिनी के पीछे खड़ी थी। उस आदमी की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी। उसने दबी आँखों से उसकी ओर देखा। उसके समस्त शरीर में सनसनी-सी दौड़ गई। क्या स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ? आँखों पर विश्वास न आया; फिर उस पर निगाह डाली उसकी छाती वेग से धड़कने लगी। पैर थरथर काँपने लगे। ऐसा मालूम हुआ मानो चारों ओर जल ही जल है, और मैं उसमें बही जा रही हूँ। उसने अपनी संगिनी का हाथ पकड़ लिया, नहीं तो जमीन पर गिर पड़ती। उसके सम्मुख वही पुरुष खड़ा था जो उसका प्राणाधार था और जिससे इस जीवन में भेंट होने की उसे लेशमात्र भी आशा न थी। यह मँगरू था, इसमें जरा भी

संदेह न था। हाँ उसकी सूरत बदल गई थी। यौवन-काल की वह कान्तिमय, सहास, सदय छवि, नाम को भी न थी। बाल खिचड़ी हो गये थे, गाल पिचके हुए, लाल आँखों से कुवासना और कठोरता झलक रही थी। पर था वह मँगरू। गौरा के जी में प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी के पैरों से लिपट जाऊँ, चिल्लाने को जी चाहा, पर संकोच ने मन को रोका। बूढ़े ब्राह्मण ने बहुत ठीक कहा था। स्वामी ने अवश्य मुझे बुलाया था और मेरे आने से पहले यहाँ चले आये। उसने अपनी संगिनी के कान में कहा—बहन, तुम उस ब्राह्मण को व्यर्थ ही बुरा कह रही थीं। यही तो वह हैं जो यात्रियों के नाम लिख रहे हैं।

स्त्री—सच, खूब पहचानती हो ?

गौरा—बहन, क्या इसमें भी धोखा हो सकता है ?

स्त्री—तब तो तुम्हारे भाग्य जाग गये। मेरी भी सुध लेना !

गौरा—भला बहन, ऐसा भी हो सकता है कि यहाँ तुम्हें छोड़ दूँ।

मँगरू यात्रियों से बात बात पर बिगड़ता था, बात बात पर गालियाँ देता था, कई आदमियों को ठोकर मारे और कई को केवल अपने गाँव का जिला न बता सकने के कारण धक्का देकर गिरा दिया। गौरा मन ही मन गड़ी जाती थी। साथ ही अपने स्वामी के अधिकार पर उसे गर्व भी हो रहा था। आखिर मँगरू उसके सामने आकर खड़ा हो गया और कुचेष्टापूर्ण नेत्रों से देखकर बोला—तुम्हारा क्या नाम है ?

गौरा ने कहा—गौरा।

मँगरू चौंक पड़ा, फिर बोला—घर कहाँ है?

गौरा ने कहा—मदनपुर, जिला बनारस।

यह कहते कहते उसे हँसी आ गई। मँगरू ने अब की उसकी ओर ध्यान से देखा, तब लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला—गौरा! तुम यहाँ कहाँ? मुझे पहचानती हो?

गौरा रो रही थी, मुँह से बात न निकली।

मँगरू फिर बोला—तुम यहाँ कैसे आईं?

गौरा खड़ी हो गई आँसू पोंछ डाले और मँगरू की ओर देखकर बोली—तुम्हीं ने तो बुला भेजा था!

मँगरू—मैंने! मैं तो सात साल से यहाँ हूँ।

गौरा—तुमने उस बूढ़े ब्राह्मण से मुझे लाने को नहीं कहा था?

मँगरू—कह तो रहा हूँ मैं सात साल से यहाँ हूँ और मरने पर ही यहाँ से जाऊँगा। भला तुम्हें क्यों बुलाता?

गौरा को मँगरू से इस निष्ठुरता की आशा न थी। उसने सोचा, अगर यह सत्य भी हो कि इन्होंने मुझे नहीं बुलाया, तो भी न्हें मेरा यों अपमान न करना चाहिए था। क्या यह समझते हैं कि मैं इनकी रोटियों पर आई हूँ। यह तो इतने ओछे स्वभाव के न थे। शायद दरजा पाकर इन्हें मद हो गया है। नारि-सुलभ अभिमान से गरदन उठाकर उसने कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो अब से लौट जाऊँ! तुम्हारे ऊपर भार बनना नहीं चाहती।

मँगरू कुछ लज्जित होकर बोला—अब तुम यहाँ से लौट नहीं सकती गौरा ! यहाँ आकर बिरला ही कोई लौटता है।

यह कहकर वह कुछ देर चिंता में मग्न खड़ा रहा, मानो संकट में पड़ा हुआ हो कि क्या करना चाहिए। उसकी कठोर मुखाकृति पर दीनता का रंग झलक पड़ा। तब कातर स्वर से बोला—जब आ गई हो तो रहो। जैसी कुछ पड़ेगी, देखी जायगी।

गौरा—जहाज फिर कब लौटेगा ?

मँगरू—तुम यहाँ से पाँच बरस के पहले नहीं जा सकतीं।

गौरा—क्यों, क्या कुछ जबरदस्ती है !

मँगरू—हाँ, यहाँ का यही हुक्म है।

गौरा—तो फिर मैं अलग मजूरी करके अपना पेट पालूँगी।

मँगरू ने सजल नेत्र होकर कहा—जब तक मैं जीता हूँ, तुम मुझसे अलग नहीं रह सकतीं।

गौरा—तुम्हारे ऊपर भार बन कर न रहूँगी।

मँगरू—मैं तुम्हें भार नहीं समझता गौरा, लेकिन यह जगह तुम-जैसी देवियों के रहने लायक नहीं है, नहीं तो अब तक मैंने तुम्हें कब का बुला लिया होता। वही बूढ़ा आदमी जिसने तुम्हें बहकाया, मुझे घर से आते समय पटने में मिल गया और झाँसे देकर मुझे यहाँ भरती करा दिया। तब से यहीं पड़ा हुआ हूँ। चलो मेरे घर में रहो, वहाँ बातें होंगी। यह दूसरी औरत कौन है ?

गौरा—यह मेरी सखी हैं। इन्हें भी वही बूढ़ा बहका लाया है।

मँगरू—यह तो किसी कोठी में जायँगी ? इन सब आद-मियों की बाँट होगी। जिसके हिस्से में जितने आदमी आयेंगे उतने हरएक कोठी में भेजे जायेंगे।

गौरा—यह तो मेरे साथ रहना चाहती हैं !

मँगरू—अच्छी बात है, उन्हें भी लेती चलो।

यात्रियों के नाम तो लिखे ही जा चुके थे, मँगरू ने उन्हें एक चपरासी को सौंपकर दोनों औरतों के साथ घर की राह ली। दोनों ओर सघन वृक्षों की कतारें थीं। जहाँ तक निगाह जाती थी ऊख ही ऊख दिखाई देती थी। समुद्र की ओर से शीतल, निर्मल वायु के झोंके आ रहे थे। अत्यन्त सुरम्य दृश्य था। पर मँगरू की निगाह उस ओर न थी। वह भूमि की ओर ताकता, सिर झुकाये, संदिग्ध चाल से चला जा रहा था। मानो मन ही मन कोई समस्या हल कर रहा है।

थोड़ी ही दूर गये थे कि सामने से दो आदमी आते हुए दिखाई दिये। समीप आकर दोनों रुक गये और एक ने हँसकर कहा—मँगरू, इनमें से एक हमारी है।

मँगरू ने कुछ जवाब न दिया, मानो उसने बात ही नहीं सुनी। उस आदमी ने फिर कहा—सुनते हो कि नहीं, मैं कह रहा हूँ, इनमें से एक हमारी है !

दूसरा बोला—और दूसरी मेरी !

मँगरू का चेहरा तमतमा उठा था। भीषण क्रोध से काँपता बोला—यह दोनों मेरे घर की औरतें हैं। समझ गये ?

इस पर दोनों ने ज़ोर से क़हक़हा मारा और एक ने गौरा के समीप आकर उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करके कहा—यह मेरी है, चाहे तुम्हारे घर की हो, चाहे बाहर की। बचा, हमें चकमा देते हो।

मँगरू—क़ासिम, इन्हें मत छेड़ो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैंने कह दिया, मेरे घर की औरतें हैं!

मँगरू की आँखों से अग्नि-ज्वाला-सी निकल रही थी। वह दोनों उसके मुख का भाव देखकर कुछ सहम गये और 'समझ लेने' की धमकी देकर आगे बढ़े! किन्तु मँगरू के आघात-क्षेत्र से बाहर पहुँचते ही एक ने पीछे से ललकारकर कहा—देखें, कहाँ लेके जाते हो!

मँगरू ने उधर ध्यान न दिया। ज़रा क़दम बढ़ाकर चलने लगा, जैसे संध्या के एकान्त में हम क़ब्रिस्तान के पास से गुज़रते हैं। हमें पग पग पर यह शंका होती है कि कोई शब्द कान में न पड़ जाय, कोई सामने आकर खड़ा न हो जाय, कोई ज़मीन के नीचे से कफ़न ओढ़े उठ न खड़ा हो।

गौरा ने कहा—यह दोनों बड़े शोहदे थे।

मँगरू—और मैं किस लिए कह रहा था कि यह जगह तुम-जैसी स्त्रियों के रहने लायक़ नहीं है।

सहसा, दाहनी तरफ़ से एक अँगरेज़ घोड़ा दौड़ाता हुआ आ पहुँचा और मँगरू से बोला—वेल जमादार यह दोनों औरतें हमारे कोठी में रहेगा। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं है।

मँगरू ने दोनों औरतों को अपने पीछे कर लिया और सामने खड़ा होकर बोला—साहब, यह दोनों हमारे घर की औरतें हैं।

साहब—ओ हो! तुम झूठा आदमी। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं और तुम दो ले जायगा। ऐसा नहीं हो सकता। (गौरा की ओर इशारा करके) इसको हमारे कोठी पर पहुँचा दो!

मँगरू—हम कह रहे हैं कि यह दोनों हमारे घर की औरतें हैं।

साहब—कुछ परवा नहीं, हमारे कोठी में पहुँचा दो।

मँगरू ने सिर से पैर तक काँपते हुए कहा—ऐसा नहीं हो सकता!

मगर साहब आगे बढ़ गया था, उसके कान में बात न पहुँची। उसने हुक्म दे दिया था और उसकी तामील करना जमादार का काम था।

शेष मार्ग निर्विघ्न समाप्त हुआ। आगे मजूरों के रहने के मिट्टी के घर थे। द्वारों पर स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ बैठे हुए थे। सभी इन दोनों स्त्रियों की ओर घूरते थे और आपस में इशारे करके हँसते थे। गौरा ने देखा उनमें छोटे-बड़े का लिहाज़ नहीं है न किसी की आँख में शर्म है!

एक भद्दैमल औरत ने हाथ पर चिलम पीते हुए अपनी पड़ोसिन से कहा—चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरा पाख!

दूसरी अपनी चोटी गूँथती हुई बोली—कलोर है न!

(८)

मँगरू दिन-भर द्वार पर बैठा रहा मानो कोई किसान अपने

मटर के खेत की रखवाली कर रहा हो। कोठरी में दोनों स्त्रियाँ अपने नसीबों को रो रही थीं। इतनी ही देर में दोनों को यहाँ की दशा का परिचय हो गया था। दोनों भूखी प्यासी बैठी थीं। यहाँ का रंग देख-कर भूख-प्यास सब भाग गई थी।

रात के १० बजे होंगे कि एक सिपाही ने आकर मँगरू से कहा—चलो तुम्हें एजेंट साहब बुला रहे हैं।

मँगरू ने बैठे बैठे कहा—देखो नब्बी, तुम भी हमारे देश के आदमी हो। कोई मौक़ा पड़े तो हमारी मदद करोगे न? जाकर साहब से कह दो मँगरू कहीं गया है। बहुत होगा जुरबाना कर देंगे।

नब्बी—न भैया, गुस्से में भरा बैठा है, पिये हुए है, कहीं मार चले तो बस, यहाँ चमड़ा इतना मज़बूत नहीं है।

मँगरू—अच्छा तो जाकर कह दो, नहीं आता।

नब्बी—मुझे क्या, जाकर कह दूँगा, पर तुम्हारी खैरियत नहीं है।

मँगरू ने ज़रा देर सोचकर लकड़ी उठाई और नब्बी के साथ साहब के बँगले पर चला। यह वही साहब थे जिनसे आज मँगरू की भेंट हुई थी। मँगरू जानता था कि साहब से बिगाड़ करके यहाँ एक क्षण भी निर्वाह नहीं हो सकता। जाकर साहब के सामने खड़ा हो गया। साहब ने दूर ही से डाटा—वह औरत कहाँ है? तुम उसे अपने घर में क्यों रक्खा है?

मँगरू—हजूर, वह मेरी ब्याहता औरत है।

साहब—अच्छा, वह दूसरा कौन है?

मँगरू—मेरी सगी बहन है हजूर!

साहब—हम कुछ नहीं जानता। तुमको लाना पड़ेगा। दो में कोई, दो में कोई!

मँगरू एजेंट के पैरों पर गिर पड़ा और रो रोकर अपनी सारी राम-कहानी सुना गया; पर साहब ज़रा भी न पसीजे। अंत में वह बोला—हजूर, वह दूसरी औरतों की तरह नहीं हैं। अगर यहाँ आ भी गईं तो प्राण दे देंगी।

साहब ने हँसकर कहा—ओ! जान देना इतना आसान नहीं है।

नब्बी—मँगरू, अपनी दाँव रोते क्यों हो। तुम हमारे घर में नहीं घुसे थे? अब भी जब घात पाते हो जा पहुँचते हो, अब रोते क्यों हो?

एजेंट—ओ, यह बदमाश है। अभी जाकर लाओ, नहीं तो हम तुमको हंटरों से पीटेगा।

मँगरू—हजूर जितना चाहें पीट लें, मगर मुझसे वह काम करने को न कहें जो मैं जीते-जी नहीं कर सकता!

एजेंट—हम एक सौ हंटर मारेगा।

मँगरू—हजूर एक हज़ार हंटर मार लें, लेकिन मेरी घर की औरतों से न बोलें।

एजेंट नशे में चूर था। हंटर लेकर मँगरू पर पिल पड़ा और लगा सड़ासड़ जमाने। दस-बारह कोड़े तो मँगरू ने धैर्य के साथ

हे, फिर हाय हाय करने लगा। देह की खाल फट गइ थी और
ांस पर जब चाबुक पड़ता था तो बहुत ज़ब्त करने पर भी कंठ से
गार्त-ध्वनि निकल आती थी, और अभी एक सौ में कुल पंद्रह
ग्राबुक पड़े थे !

रात के दस बज गये थे चारों ओर सन्नाटा छाया था और
स नीरव अन्धकार में मँगरू का करुण-विलाप किसी पक्षी की
ाँति आकाश में मँडला रहा था। वृक्षों के समूह भी हत्बुद्धि-से
ग्रड़े मौन रोदन की मूर्ति बने हुए थे। यह पाषाण-हृदय, लम्पट,
व्रिवेक-शून्य जमादार इस समय एक अपरिचित स्त्री के सतीत्व
ी रक्षा करने के लिए अपने प्राण तक देने पर तैयार था, केवल
़स नाते कि वह उसके पत्नी की संगिनी थी! वह समस्त संसार की
ाज़रों में गिरना गवारा कर सकता था, पर अपनी पत्नी की भक्ति
ार अखंड राज्य करना चाहता था! इसमें अणु-मात्र की कमी भी
उसके लिए असह्य थी। उस अलौकिक भक्ति के सामने उसके
जीवन का क्या मूल्य था?

ब्राह्मणी तो ज़मीन ही पर सो गई थी, पर गौरा बैठी पति की
बाट जोह रही थी। अभी तक वह उससे कोई बात न कह सकी
थी। सात वर्षों की विपत्ति-कथा कहने और सुनने के लिए बहुत
समय की ज़रूरत थी, और रात के सिवा वह समय और कब
मिल सकता था। उसे उस ब्राह्मणी पर कुछ क्रोध-सा आ रहा था
कि यह क्यों मेरे गले का हार हुई। इसी के कारण तो वह घर में
नहीं आ रहे हैं!

एकाएक वह किसी का रोना सुनकर चौंक पड़ी ! भगवान्, इतनी रात गये कौन दुख का मारा रो रहा है। अवश्य कोई कहीं मर गया है। वह उठकर द्वार पर आई और यह अनुमान करके कि मँगरू यहाँ बैठा हुआ है, बोली—यह कौन रो रहा है? ज़रा जाकर देखो तो !

लेकिन जब कोई जवाब न मिला तो वह स्वयं कान लगाकर सुनने लगी। सहसा उसका कलेजा धक से हो गया। यह तो उन्हीं की आवाज़ है। अब आवाज़ साफ़ सुनाई दे रही थी। मँगरू की आवाज़ थी। वह द्वार के बाहर निकल आई। सामने एक गोली के टप्पे पर एजेंट का बँगला था। उसी तरफ़ से आवाज़ आ रही थी। कोई उन्हें मार रहा । आदमी मार पड़ने ही पर इस तरह रोता है। मालूम होता है वही साहब उन्हें मार रहा है। वह वहाँ खड़ी न रह सकी, पूरी शक्ति से उस बँगले की ओर दौड़ी। रास्ता साफ़ था, एक क्षण में वह फाटक पर पहुँच गई। फाटक बंद था। उसने ज़ोर से फाटक पर धक्का दिया लेकिन जब फाटक न खुला और कई बार ज़ोर ज़ोर से पुकारने पर भी कोई बाहर न निकला तो वह फाटक के जँगलों पर पैर रखके भीतर कूद पड़ी और उस पार जाते ही उसने एक रोमाञ्चकारी दृश्य देखा। मँगरू नंगे बदन बरामदे में खड़ा था और एक अँगरेज़ उसे हंटरों से मार रहा था। गौरा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह एक छलाँग में साहब के सामने जाकर खड़ी हो गई और मँगरू को अपने अक्षय-प्रेम-सबल हाथों से ढककर बोली—

सरकार ! दया करो, इनके बदले मुझे जितना चाहो, मार लो; पर इनको छोड़ दो।

एजेंट ने हाथ रोक लिया और उन्मत्त की भाँति गौरा की ओर कई क़दम आकर बोला—हम इसको छोड़ दें तो तुम यहाँ मेरे पास रहेगा ?

मँगरू के नथने फड़कने लगे। यह पामर, नीच अँगरेज़ मेरी पत्नी से इस तरह की बातें कर रहा है ! अब तक वह जिस अमूल्य रत्न की रक्षा के लिए इतनी यातनाएँ सह रहा था, वही वस्तु साहब के हाथ में चली जा रही है, यह असह्य था। उसने चाहा कि लपककर साहब की गरदन पर चढ़ बैठूँ, जो कुछ होना है हो जाय, यह अपमान सहने के बाद जीकर ही क्या करूँगा, लेकिन नब्बी ने उसे तुरंत पकड़ लिया और कई आदमियों को बुलाकर उसके हाथ-पाँव बाँध दिये। मँगरू भूमि पर छटपटाने लगा !!

गौरा रोती हुई साहब के पैरों पर गिर पड़ी और बोली—हुजूर, इन्हें छोड़ दें, मुझ पर दया करें।

एजेंट—तुम हमारे पास रहेगा ?

गौरा ने ख़ून का घूँट पीकर कहा—हाँ रहूँगी।

(९)

बाहर मँगरू बरामदे में पड़ा कराह रहा था। उसकी देह में सूजन थी और घावों में जलन, सारे अङ्ग जकड़ गये थे। हिलने की भी शक्ति न थी। हवा घावों में शर के समान चुभती थी, लेकिन यह सारी व्यथा वह सह सकता था। असह्य यह था कि

साहब गौरा के साथ इसी घर में विहार कर रहा है और मैं कुछ नहीं कर सकता। उसे अपनी पीड़ा भूल-सी गई थी, कान लगाये सुन रहा था कि उनके बातों की भनक कान में पड़ जाय; देखूँ क्या बातें हो रही हैं। गौरा अवश्य चिल्लाकर भागेगी और साहब उसके पीछे दौड़ेगा। अगर मुझसे उठा जाता तो उस वक्त बचा को खोदकर गाड़ ही देता। लेकिन बड़ी देर हो गई, न तो गौरा चिल्लाई, न बँगले से निकलकर भागी। वह उस सजे-सजाये कमरे में साहब के साथ बैठी सोच रही थी, क्या इसमें तनिक भी दया नहीं है। मँगरू की पीड़ा-क्रन्दन सुन सुनकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। क्या इसके अपने भाई-बन्धु, माँ-बहन नहीं हैं? माता यहाँ होती तो इसे इतना अत्याचार न करने देती। मेरी अम्माँ लड़कों पर कितना बिगड़ती थीं, जब वह किसी को पेड़ पर ढेले चलाते देखती थीं पेड़ में भी प्राण होते हैं। क्या इसकी माता इसे एक आदमी के प्राण लेते देखकर भी इसे मना न करती! साहब शराब पी रहा था और गौरा गोश्त काटने का छुरा हाथ में लिये खेल रही थी।

सहसा गौरा की निगाह एक चित्र की ओर गई। उसमें एक स्त्री बैठी हुई थी। गौरा ने पूछा—साहब, यह किसकी तसवीर है?

साहब ने शराब का ग्लास मेज़ पर रखकर कहा—ओ, यह हमारे खुदा की माँ मरियम है।

गौरा—बड़ी अच्छी तसवीर है। क्यों साहब, तुम्हारी माँ जीती है न?

साहब—वह मर गया। हम जब यहाँ आया तो वह बीमार हो गया। हम उसको देख भी नहीं सका।

साहब के मुख-मण्डल पर करुणा की झलक दिखाई दी।

गौरा बोली—तब तो उन्हें बड़ा दुख हुआ होगा। तुम्हें अपनी माता का भी प्यार नहीं था। वह रो रोकर मर गई और तुम देखने भी न गये। तभी तुम्हारा दिल इतना कड़ा है!

साहब—नहीं नहीं, हम अपनी मामा को बहुत चाहता था। वैसा औरत दुनिया में न होगा। हमारा बाप हमको बहुत छोटा-सा छोड़कर मर गया था। मामा ने कोयले की खान में मजूरी करके हमको पाला।

गौरा—तब तो वह देवी थीं। इतनी ग़रीबी का दुख सहकर भी तुम्हें दूसरों पर तरस नहीं आता? क्या वह दया की देवी तुम्हारी बेदरदी देखकर दुखी न होती होंगी? उनकी कोई तसवीर तुम्हारे पास है?

साहब—ओ, हमारे पास उनकी कई फ़ोटो हैं। देखो वह उन्हीं की तसवीर है, वह दीवार पर!

गौरा ने समीप जाकर तसवीर देखी और आकर करुण स्वर में बोली—सचमुच देवी थीं जान पड़ता है दया की देवी हैं। वह तुम्हें कभी मारती थीं कि नहीं? मैं तो जानती हूँ वह कभी किसी पर न बिगड़ती रही होंगी। बिलकुल दया की मूर्ति हैं।

साहब—ओ, मामा हमको कभी नहीं मारता था वह बहुत ग़रीब था; पर अपनी कमाई में कुछ न कुछ ज़रूर ख़ैरात करता

था। किसी बे-बाप के बालक को देखकर उसकी आँखों में आँसू भर आता था। वह बहुत ही दयावान था।

गौरा ने तिरस्कार के स्वर में कहा—और उसी देवी के पुत्र होकर तुम इतने निदयी हो! क्या वह होतीं तो तुम्हें किसी को इस तरह हत्यारों की भाँति मारने देतीं? वह सरग में रो रही होंगी। सरग-नरक तो तुम्हारे यहाँ भी होगा। ऐसी देवी के पुत्र तुम कैसे हो गये?

गौरा को ये बातें कहते हुए ज़रा भी भय न हुआ। उसने मन में एक दृढ़ संकल्प कर लिया था और अब उसे किसी प्रकार का भय न था। जान से हाथ धो लेने का निश्चय कर लेने के बाद भय की छाया भी नहीं रह जाती। किन्तु वह हृदय-शून्य अँगरेज इन तिरस्कारों पर आग हो जाने के बदले और भी नम्र होता जाता था। गौरा मानवी भावों से कितनी ही अनभिज्ञ हो, पर इतना जानती थी कि अपनी जननी के लिए प्रत्येक हृदय में, चाहे वह साधु का हो या क़साई का, आदर और प्रेम का एक कोना सुरक्षित रहता है। ऐसा भी कोई अभागा प्राणी है जिसे मातृ-स्नेह की स्मृति थोड़ी देर के लिए रुला न देती हो, उसके हृदय के कोमल भावों को जगा न देती हो?

साहब की आँखें डबडबा गई थीं। सिर झुकाये बैठा रहा। गौरा ने फिर उसी ध्वनि में कहा—तुमने उनकी सारी तपस्या धूल में मिला दी। जिस देवी ने मर मरकर तुम्हारा पालन किया, उसी को मरने के पीछे तुम इतना कष्ट दे रहे हो? क्या इसी लिए

माता अपने पुत्र को अपना रक्त पिला पिलाकर पालती है! अगर वह बोल सकतीं तो क्या चुप बैठी रहतीं, तुम्हारे हाथ पकड़ सकतीं तो न पकड़तीं? मैं तो समझती हूँ, वह जीती होतीं तो इस वक्त विष खाकर मर जातीं।

साहब अब ज़ब्त न कर सके। नशे में क्रोध की भाँति ग्लानि का वेग भी सहज ही में उठ आता है। दोनों हाथों से मुँह छिपाकर साहब ने रोना शुरू किया, और इतना रोया कि हिचकी बँध गई। माता के चित्र के सम्मुख जाकर वह कुछ देर तक खड़ा रहा मानो माता से क्षमा माँग रहा हो। तब आकर आर्द्र-कण्ठ से बोला—हमारे मामा को अब कैसे शांति मिलेगा! हाय हाय! हमारे सबब से उसको स्वर्ग में भी सुख नहीं मिला। हम कितना अभागा है।

गौरा—अभी ज़रा देर में तुम्हारा मन बदल जायगा और तुम फिर दूसरों पर यही अत्याचार करने लगोगे।

साहब—नईं नईं, अब हम मामा को कभी दुख नहीं देगा। हम अभी मँगरू को अस्पताल भेजता है।

(१०)

रात को मँगरू अस्पताल पहुँचा दिया गया। एजेंट खुद उसको पहुँचाने गया। गौरा भी उसके साथ थी। मँगरू को ज्वर हो आया था, बेहोश पड़ा हुआ था।

मँगरू ने तीन दिन आँखें न खोलीं और गौरा तीनों दिन उसके पास बैठी रही। एक क्षण के लिए भी वहाँ से न हटी। एजेंट भी

कई कई बार हाल-चाल पूछने आ जाता और हर मरतबा गौरा से क्षमा माँगता।

चौथे दिन मँगरू ने आँखें खोलीं तो देखा, गौरा सामने बैठी हुई है। गौरा उसे आँखें खोलते देखकर पास आ खड़ी हुई और बोली—अब कैसा जी है?

मँगरू ने कहा—तुम यहाँ कब आईं?

गौरा—मैं तो तुम्हारे साथ ही यहाँ आई थी, तबसे यहीं हूँ।

मँगरू—साहब के बँगले में क्या जगह नहीं है?

गौरा—अगर बँगले की चाह होती तो सात समुद्र पार तुम्हारे पास क्यों आती?

गौरा—आकर कौनसा सुख दे दिया। तुम्हें यही करना था तो मुझे मर क्यों न जाने दिया।

गौरा ने झुँझलाकर कहा—तुम इस तरह की बातें मुझसे न करो। ऐसी बातों से मेरी देह में आग लग जाती है।

मँगरू ने मुँह फेर लिया, मानो उसे गौरा की बात पर विश्वास नहीं आया।

दिन-भर गौरा मँगरू के पास बेदाना-पानी खड़ी रही और दिन-भर मँगरू उसकी ओर से मुँह फेरे पड़ा रहा। गौरा ने कई बार उसे बुलाया लेकिन वह चुप्पी साधे रह गया। यह संदेह-युक्त निरादर कोमल-हृदय गौरा के लिए असह्य था। जिस पुरुष को वह देव-तुल्य समझती थी उसके प्रेम से वंचित होकर वह कैसे जीवित रह सकती थी? यही प्रेम उसके जीवन का

आधार था। उसे खोकर अब वह अपना सर्वस्व खो चुकी थी।

आधी रात से अधिक बीत चुकी थी। मँगरू बेख़बर सोया हुआ था। शायद वह कोई स्वप्न देख रहा था। गौरा ने उसके चरणों पर सिर रक्खा और अस्पताल से निकली। मँगरू ने उसे परित्याग कर दिया था। वह भी उसका परित्याग करने जा रही थी।

अस्पताल के पूर्व दिशा में एक फ़रलांग पर एक छोटी-सी नदी बहती थी। गौरा उसके कगार पर खड़ी हो गई। अभी कई दिन पहले वह अपने गाँव में आराम से पड़ी हुई थी। उसे क्या मालूम था कि जो वस्तु इतनी मुश्किल से मिल सकती है, वह इतनी आसानी से खोई भी जा सकती है। उसे अपने माँ की, अपने घर की, अपने सहेलियों की, अपने बकरी के बच्चों की याद आई। वह सब सुख छोड़कर इसी लिए यहाँ आइ थी! पति के ये शब्द—"क्या साहब के बँगले में जगह नहीं है?"—उसके मर्म-स्थान में बाणों के समान चुभे हुए थे। यह सब मेरे ही कारण तो हुआ? मैं न रहूँगी तो वह फिर आराम से रहेंगे। सहसा उसे ब्राह्मणी की याद आ गई। उस दुखिया के दिन यहाँ कैसे कटेंगे। चलकर साहब से कह दूँ कि उसे या उसके घर भेज दें या किसी पाठशाला में काम दिला दें।

वह लौटा ही चाहती थी कि किसी ने पुकारा—गौरा! गौरा! वह मँगरू का करुणा-कंपित स्वर था। वह चुपचाप खड़ी हो गई। मँगरू ने फिर पुकारा—गौरा! गौरा! तुम कहाँ हो, मैं ईश्वर से कहता हूँ कि........।

गौरा ने और कुछ न सुना। वह धम से नदी में कूद पड़ी। विना अपने जीवन का अन्त किये वह स्वामी की विपत्ति का अन्त न कर सकती थी !

धमाके की आवाज सुनते ही मँगरू भी नदी में कूदा। वह अच्छा पैराक था। मगर कई बार गोते मारने पर भी गौरा का कहीं पता न चला।

प्रातःकाल दोनों लाशें साथ साथ नदी में तैर रही थीं। जीवन-यात्रा में उन्हें यह चिर-संग कभी न मिला था। स्वर्ग-यात्रा में दोनों साथ साथ जा रहे थे !!